योगविद्या

वर्ष 10 अंक 7
जुलाई 2021
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2021

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : स्वामी सत्यानन्द सरस्वती एवं स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

अन्दर के रंगीन फोटो : 1: स्वामी शिवानन्द सरस्वती
2 & 3: गुरु पूजा, गंगा दर्शन, 2021
4: स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

गुरु की महिमा

यदि आप किसी व्यक्ति की संगति में उन्नत और उदात्त अनुभव करते हैं और आप पाते हैं कि वे सरल, विनीत, विनम्र, सहिष्णु, दयालु, निष्काम, नि:स्वार्थ, शान्त, प्रेममय एवं विवेकी हैं, तो उन्हें अपना गुरु बना लें। अनेक वर्षों तक सद्गुरु के सान्निध्य में रहने के बावजूद भी उनकी महानता को समझ पाना बहुत कठिन है। वे समुद्र के समान गहरे होते हैं। उनकी महिमा अकथनीय, ज्ञान वर्णनातीत तथा अवस्था अबोधगम्य होती है। अपने गुरु की सेवा करना आपका प्राथमिक कर्त्तव्य है। आप उनके शरीर की सेवा करें, वे आपकी आत्मा का उत्थान करेंगे।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 10 अंक 7 जुलाई 2021
(प्रकाशन का 59 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 गुरु की भूमिका
11 गुरु परम्परा
14 संसार, मोक्ष और गुरु
24 गुरु और मन्त्र
32 शिव का प्रेरक पत्रादेश
33 भावना का भक्ति में रूपान्तरण
39 आज्ञाकारिता और पात्रता
41 बच्चों में बच्चे, बूढ़ों में बूढ़े
45 निष्काम भावना की महत्ता
47 गुरु पूर्णिमा अभिनंदन
48 गज-ग्राह-गाथा – योग के आलोक में
50 समर्थ गुरु के समर्पित शिष्य
54 हे सत्यम्! तुमको प्रणाम

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

गुरु की भूमिका

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सत्य एवं पूर्णता की ओर खुलने वाले द्वार की चाबी उनके पास नहीं होती, जो बौद्धिक विश्लेषण करते हैं, बल्कि उनके पास होती है, जो सत्य को संसार से प्राप्त होने वाले एक वस्तुपरक अनुभव के रूप में नहीं, बल्कि अन्तर्दृष्टि से प्राप्त होने वाले एक आत्मपरक ज्ञान के रूप में देखते हैं। इन्हें ऋषि, मुनि या ब्रह्मनिष्ठ कहा जाता है, जो मात्र एक दृष्टि या स्पर्श से आध्यात्मिक चेतना का संचार कर सकते हैं। ऐसे व्यक्ति ही गुरु होते हैं, जो सामान्य लोगों को सत्य का ज्ञान देते और उनमें ईश्वरीय चेतना का संचार करते हैं।

यद्यपि गुरु वास्तव में ऐसा कुछ नहीं देते, जो शिष्य के पास नहीं है, तथापि वे साधक के अज्ञान के पीछे छिपे आध्यात्मिक खजाने को उजागर करने का साधन बनते हैं। गुरु से ही साधक दिव्य भाव और आध्यात्मिक स्फुरण प्राप्त करता है। जो कुछ साधक प्राप्त करता है, उसे वह अपनी सच्ची साधना से हजार गुना बढ़ाता है। सभी साधकों का यह कर्तव्य है। गुरु ही परा चेतना की ओर जाने वाला द्वार है, परन्तु साधक को स्वयं ही इस मार्ग पर चलना पड़ता है। गुरु से सहायता मिलती है, किन्तु व्यावहारिक साधना का कार्य तो साधक को स्वयं ही करना पड़ता है।

वास्तव में गुरु आपके हृदय में ही निवास करते हैं। वे सदा आपके साथ ही होते हैं। आपको सच्चे भाव से उनको स्मरण भर करना है और तुरन्त ही आप उनकी दिव्य अनुभूति प्राप्त करेंगे। जितना ही आपका निम्न-अहंकार कम होता जाएगा, गुरु आपमें तथा आपके समक्ष प्रकट होते जाएँगे। अत: उनका स्वागत करने के लिये सदा तैयार रहिये एवं स्वयं को रिक्त बनाइये, ताकि वे आपमें अवतरित हो सकें।

शिष्य के कर्तव्य

श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया है कि जिस साधक की परम देव परमात्मा में परम भक्ति है तथा जितनी भक्ति परमेश्वर में है, उतनी ही भक्ति गुरु में भी है, उस महात्मा पुरुष के हृदय में ही ये रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं –

यस्य देवे पराभक्ति: यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मन:॥

शिष्य वह है, जो गुरु के उपदेशों का अक्षरश: तथा भावश: पालन करता है तथा उनकी शिक्षाओं का प्रचार और प्रसार अपने से कम विकसित आत्माओं में आजीवन करता रहता है। सच्चा शिष्य केवल गुरु के दिव्य स्वरूप से सम्बन्ध

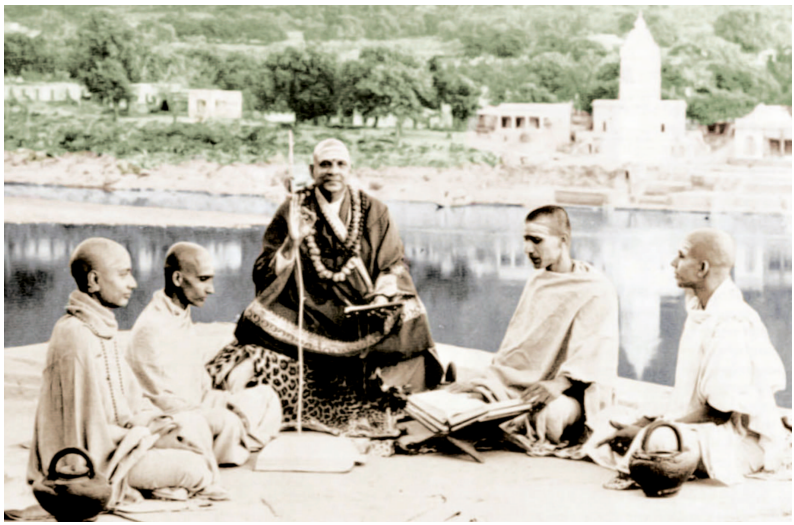

रखता है। गुरु मानव होने के नाते जो कार्य करता है, उसकी वह चिन्ता नहीं करता। वह इस ओर पूर्ण विस्मरणशील-सा रहता है। उसके लिए गुरु गुरु हैं, भले ही वह लोकाचार के विपरीत व्यवहार करें। सदा स्मरण रखें कि सन्त का स्वरूप इतना व्यापक होता है कि उसे साधारण बुद्धि से नहीं समझा जा सकता। उनके विषय में अपना कोई मत न बनाइए। अपने अज्ञान के अक्षम मापदण्ड से उनके दिव्य स्वरूप को न मापिये। व्यापक दृष्टिकोण से सम्पादित अपने गुरु के कार्यों की आलोचना न कीजिए।

विशुद्ध शिष्यत्व दृष्टि पर पड़े पर्दे को हटाता है। यह आध्यात्मिक अग्नि प्रज्वलित करता है। यह प्रसुप्त क्षमताओं को जागृत करता है। यह आध्यात्मिक पथ की यात्रा में सबसे आवश्यक सम्बल है। गुरु तथा शिष्य एक बन जाते हैं। गुरु शिष्य को आशीर्वाद देता, उसका पथप्रदर्शन करता तथा उसे प्रेरणा देता है। वह उसमें शक्ति-संचार करता, उसे रूपान्तरित करता और आध्यात्मिक बनाता है।

गुरु का सान्निध्य प्राप्त करने का अधिकारी

गुरु का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए आपको उपयुक्त अधिकारी होना चाहिए। विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपरति, गुरु में श्रद्धा, भगवद्भक्ति – इन आवश्यक गुणों के साथ साधक को गुरु के समीप जाना चाहिए।

गुरु केवल उसी साधक को आध्यात्मिक उपदेश प्रदान करता है, जो मुमुक्षु हो, जो शास्त्रों के आदेशों का यथावत् पालन करता हो, जिसने अपनी दुर्वासनाओं तथा इन्द्रियों का दमन किया हो, जिसका मन शान्त हो तथा जो करुणा, विश्वप्रेम,

धैर्य, विनम्रता, तितिक्षा, सहिष्णुता आदि सद्गुणों से सम्पन्न हो। जब शिष्य का मन निष्काम बन जाता है, तब ही ब्रह्म के रहस्य की दीक्षा फलित होती है और शिष्य के मन में ज्ञान उत्पन्न करती है।

गुरु सेवा

शिष्यों को आरम्भ में अपना पूरा ध्यान गुरु की दीर्घकालिक सेवा द्वारा स्वार्थपरता के निष्कासन में लगाना चाहिए। अपने गुरु की सेवा दिव्य-भाव से कीजिए। इससे पृथक् होने का भाव विलीन हो जायेगा। पोत का कप्तान सदा सतर्क रहता है। एक धीवर सदा सतर्क रहता है। शल्य-चिकित्सक शल्यकर्म-गृह में सदा सतर्क रहता है। इसी प्रकार शिष्य को अपने गुरु की सेवा में सदा सतर्क रहना चाहिए। गुरु के सेवार्थ जीवन यापन करें। आपको अवसरों की ताक में रहना चाहिए। आमन्त्रण की प्रतीक्षा न कीजिए। गुरु-सेवा के लिए अपने को स्वेच्छा से अर्पित कीजिए।

अपने गुरु की सेवा नम्रतापूर्वक, स्वेच्छापूर्वक, निर्विवाद, निरभिमानपूर्वक, खुशी से, अथक रूप से तथा प्रेमपूर्वक कीजिए। आप अपने गुरु की सेवा में जितनी अधिक शक्ति व्यय करेंगे, उतनी ही अधिक दिव्य शक्ति आप में प्रवाहित होगी।

जो गुरु की सेवा करता है, वह सम्पूर्ण विश्व की सेवा करता है। गुरु की सेवा बिना किसी स्वार्थ के करें। गुरु की सेवा करते समय अपने आन्तरिक उद्देश्य का निरीक्षण करें। गुरु की सेवा नाम, यश, सत्ता, धन आदि की इच्छा के बिना की जानी चाहिए।

गुरु की आज्ञा पालन

गुरु के प्रति श्रद्धा रखने की अपेक्षा उनकी आज्ञाओं का पालन करना श्रेष्ठतर है। आज्ञाकारिता एक मूल्यवान् सद्गुण है, क्योंकि यदि आप आज्ञाकारिता के गुण का विकास करने का प्रयास करेंगे, तो आत्म-साक्षात्कार के पथ के कट्टर शत्रु अहं का शनैः-शनैः उन्मूलन हो जाएगा।

जो शिष्य अपने गुरु की आज्ञाओं का पालन करता है, केवल वही अपनी निम्न आत्मा पर आधिपत्य रख सकता है। आज्ञाकारिता अत्यन्त व्यावहारिक, अनन्य तथा सक्रिय होनी चाहिए। गुरु की आज्ञाकारिता न तो टाल-मटोल करती है और न सन्देह ही प्रकट करती है। दम्भी शिष्य अपने गुरु की आज्ञाओं का पालन भयवश करता है। सच्चा शिष्य अपने गुरु की आज्ञाओं का पालन प्रेम के लिए, प्रेम के कारण करता है। आज्ञापालन की विधि सीखिए। उस स्थिति में ही आप आदेश दे सकते हैं। शिष्य बनना सीखिए, तभी आप गुरु बन सकेंगे।

इस भ्रामक धारणा को त्याग दीजिए कि गुरु की अधीनता स्वीकार करना, उनकी आज्ञा स्वीकार करना तथा उनकी शिक्षाओं को कार्यान्वित करना दासता की

मनोवृत्ति है। अज्ञानी व्यक्ति समझता है कि किसी अन्य व्यक्ति की अधीनता स्वीकार करना उसकी गरिमा तथा स्वाधीनता के विपरीत है। यह एक भारी गम्भीर भूल है।

यदि आप ध्यानपूर्वक चिन्तन करें, तो आप देखेंगे कि आपकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता वास्तव में आपके अपने ही अहं तथा मिथ्याभिमान की नितान्त घृणित दासता है, विषयी मन की तरंग है। जो अपने अहं तथा मन पर विजय प्राप्त कर लेता है, वास्तव में वही स्वतन्त्र व्यक्ति है। वह शूरवीर है। इस विजय को प्राप्त करने के लिए ही व्यक्ति गुरु के उच्चतर अध्यात्मिक व्यक्तित्व की अधीनता स्वीकार करता है। वह इस समर्पण के द्वारा अपने निम्न अहं को पराजित करता तथा असीम चेतना के आनन्द को प्राप्त करता है।

निश्चिन्त शिष्य

आध्यात्मिक पथ कला की स्नातकोत्तर उपाधि के लिए शोध-प्रबन्ध लिखने जैसा नहीं है। यह सर्वथा भिन्न प्रणाली है। इसमें गुरु की सहायता की आवश्यकता प्रतिक्षण रहती है। इन दिनों साधक आत्म-निर्भर, अभिमानी तथा स्वाग्रही बन गये हैं। वे गुरु की आज्ञाओं को क्रियान्वित करने की चिन्ता नहीं करते। वे गुरु बनाना नहीं चाहते। वे प्रारम्भ से ही स्वतन्त्रता चाहते हैं। वे समझते हैं कि वे तुरीय-अवस्था में हैं, जबकि उन्हें आध्यात्मिकता अथवा सत्य का प्रारम्भिक ज्ञान भी नहीं होता। वे मनमानी करने अथवा अपनी बात मनवाने को स्वतन्त्रता समझने की भूल करते हैं। यह गम्भीर शोचनीय भूल है। यही कारण है कि उनकी उन्नति नहीं होती। वे साधना की क्षमता तथा ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास खो बैठते हैं। वे कश्मीर से

गंगोत्री तक और गंगोत्री से रामेश्वरम् तक विचार-सागर और पञ्चदशी से कुछ अनाप-शनाप बकते तथा जीवनमुक्त होने का ढोंग रचते हुए लापरवाही से बिना उद्देश्य ठोकरें खाते फिरते हैं।

समर्पण तथा कृपा

यदि आप नल से जल पीना चाहते हैं, तो आपको झुकना पड़ेगा। इसी भाँति यदि आप गुरु के पवित्र अधरों से प्रवाहित होने वाली अमरता-प्रदायक आध्यात्मिक सुधा का पान करना चाहते हैं, तो आपको विनय तथा विनम्रता का मूर्तरूप बनना होगा।

मन की निम्न प्रकृति को पूर्णतया बदलना चाहिए। साधक अपने गुरु से कहता है, 'मैं योगाभ्यास करना चाहता हूँ। मैं निर्विकल्प-समाधि में प्रवेश करना चाहता हूँ। मैं आपके चरणों में बैठना चाहता हूँ। मैंने आपको आत्मसमर्पण कर दिया है।' परन्तु वह अपनी निम्न प्रकृति और स्वभाव को, पुराने चरित्र, व्यवहार और आचरण को परिवर्तित करना नहीं चाहता।

व्यक्ति को अपने अहं, धारणाओं, प्रिय विचारों, पूर्वाग्रहों तथा स्वार्थमयी इच्छाओं को त्याग देना चाहिए। ये सब गुरु के आदेशों और उपदेशों के पालन में बाधक हैं। अपने हृदय के भेद को अपने गुरु के सम्मुख अनावृत कर दें। आप जितना ही अधिक ऐसा करेंगे, उतनी ही कृपा, अर्थात् पाप तथा प्रलोभन के विरुद्ध संघर्ष में आपको शक्ति की प्राप्ति होगी।

गुरु की कृपा की आकांक्षा करने से पूर्व साधक को उसका पात्र बनना चाहिए। दिव्य कृपा की प्राप्ति तभी होती है, जब साधक में सच्ची प्यास हो और जब वह उसे ग्रहण करने योग्य हो। गुरु की कृपा उन्हीं पर अवतरित होती है, जो उनके प्रति पूर्णरूपेण विनम्र तथा निष्ठावान् होते हैं। निष्ठा गुरु में दृढ़ विश्वास तथा उनके प्रति स्वीकृति है। गुरु साक्ष्य अथवा आदेश के रूप में जो घोषित करता है, उसकी सत्यता पर बिना किसी अन्य साक्ष्य अथवा प्रमाण के दृढ़ विश्वास करना निष्ठा है। जिस शिष्य की गुरु में निष्ठा है, वह वाद-विवाद नहीं करता, सोच-विचार नहीं करता तथा चिन्तन नहीं करता। वह उसकी आज्ञाओं का पालन मात्र करता है।

शिष्य का गुरु के प्रति आत्मसमर्पण तथा गुरु की कृपा में पारस्परिक सम्बन्ध है। समर्पण गुरु की कृपा को नीचे की ओर आकृष्ट करता है तथा गुरु-कृपा समर्पण को पूर्ण बनाती है। गुरु-कृपा साधक में साधना के रूप में कार्य करती है। यदि साधक अपने पथ में दृढ़तापूर्वक संलग्न रहता है, तो यह गुरु-कृपा है। यदि प्रलोभन का आक्रमण होने पर वह प्रतिरोध करता है, तो यह गुरु-कृपा है। यदि लोग प्रेम तथा सम्मान के साथ उसका स्वागत करते हैं, तो वह गुरु-कृपा है। यदि उसे सम्पूर्ण शारीरिक आवश्यकताएँ सुलभ हैं, तो यह गुरु-कृपा है। यदि नैराश्य तथा अवसाद के समय उसे प्रोत्साहन तथा बल प्राप्त होता है, तो यह गुरु-कृपा है। यदि वह शरीर-

चेतना का अतिक्रमण कर जाता है और अपने आनन्द-स्वरूप में विश्राम करता है, तो यह गुरु-कृपा है। प्रत्येक पग पर उनकी कृपा का अनुभव कीजिए तथा उनके प्रति निष्कपट और सत्यनिष्ठ रहिए।

गुरु की उपदेश-विधि

गुरु व्यक्तिगत उदाहरण द्वारा शिक्षा देते हैं। गुरु का दैनन्दिन आचरण सतर्क शिष्य के लिए एक जीवन्त आदर्श है। सच्चे शिष्य के लिए गुरु का जीवन एक जीवन्त धर्मोपदेश है। शिष्य अपने गुरु के निरन्तर सम्पर्क द्वारा उनके सद्गुणों को आत्मसात् करता है। वह शनै:-शनै: नव आकार लेता है। छान्दोग्योपनिषद् को पढ़िए। उसमें आप पायेंगे कि इन्द्र प्रजापति के पास एक सौ एक वर्ष तक रहे और उनकी अनन्य भाव से सेवा की।

अपने शिष्यों की आध्यात्मिक आवश्यकताओं को केवल गुरु ही जानता है। वह शिष्य की प्रकृति तथा विकास के अनुसार उपदेश देता है। इस उपदेश को गुप्त रखना चाहिए। शिष्यों में उसकी परिचर्चा, गुरु की आलोचना तथा साधना में शिथिलता की ओर ले लाती है। आध्यात्मिक प्रगति नहीं हो पाती है। गुरु के उपदेश का अक्षरश: पालन कीजिए। स्मरण रखिए कि वह केवल आपके लिए है। अन्य शिष्यों ने भी गुरु का उपदेश ग्रहण किया हुआ है। उन्हें उसका पालन करने दीजिए। आपने जो उपदेश प्राप्त किया है, उसे दूसरों पर न थोपिए।

शिष्य अपनी निष्ठा की मात्रा के अनुपात में ही अपने गुरु से कृपा प्राप्त करता है। जब गुरु आध्यात्मिक उपदेश देने के लिए शिष्य के पास आता है, उस समय शिष्य यदि ध्यान नहीं देता, वह यदि अभिमानी और लापरवाह है, यदि वह अपने हृदय-द्वार में ताला लगा देता है, तो वह लाभान्वित नहीं होता।

गुरु द्वारा परीक्षा

सद्गुरु बार-बार अनुनय-विनय करने तथा कठोर परीक्षा लेने के पश्चात् ही अपने विश्वस्त शिष्यों को उपनिषद् के गूढ़ रहस्यों को बतलाता है। गुरु कभी-कभी अपने शिष्य को प्रलोभित कर सकता है, किन्तु शिष्य को चाहिए कि गुरु में दृढ़ निष्ठा के द्वारा इसे पार कर जाए।

प्राचीनकाल में बहुत ही कठिन परीक्षाएँ ली जाती थीं। एक बार गोरखनाथ जी ने अपने कुछ शिष्यों को एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़ने तथा सिर के बल नीचे एक तीक्ष्ण त्रिशूल के ऊपर कूदने के लिये कहा। अनेक अविश्वासी शिष्य निश्चल खड़े रह गये, किन्तु एक निष्ठावान् शिष्य तत्काल वृक्ष पर विद्युत-गति से चढ़ गया और अपने को नीचे गिरा दिया। गोरखनाथ जी के अदृश्य हाथों ने उसकी रक्षा की। उसे तत्काल आत्म-साक्षात्कार प्राप्त हुआ।

गुरु शिष्यों की विविध प्रकार से परीक्षा लेता है। कुछ शिष्य उन्हें गलत समझते हैं और उनमें अपनी निष्ठा खो बैठते हैं, अत: वे लाभान्वित नहीं होते।

चार प्रकार के शिष्य

सर्वोत्तम शिष्य पेट्रोल की भाँति होता है। वह बहुत दूर से गुरु के उपदेश के स्फुल्लिंग के प्रति तत्काल प्रतिक्रिया करता है। दूसरे प्रकार का शिष्य कर्पूर की भाँति होता है। एक स्पर्श उसकी अन्तरात्मा को जगाता और उसमें आध्यात्मिकता की अग्नि प्रज्वलित करता है। तीसरे प्रकार का शिष्य कोयले की भाँति होता है। उसमें भाव उत्पन्न करने के लिये गुरु को कठोर श्रम करना पड़ता है। चौथे प्रकार का शिष्य केले के स्तम्भ की भाँति होता है। उस पर किया गया कोई भी प्रयास सफल नहीं होता। गुरु चाहे कुछ भी करे, वह भावशून्य तथा निष्क्रिय बना रहता है।

सुन्दर ढंग से तैयार की हुई मूर्ति अथवा प्रतिमा के लिए दो वस्तुएँ आवश्यक होती हैं। एक है संगमरमर का पूर्ण निर्दोष सुन्दर प्रस्तर-खण्ड तथा दूसरा है निपुण मूर्तिकार। सुन्दर प्रतिमा बनाने के लिए संगमरमर-खण्ड को अप्रतिबन्धित रूप से मूर्तिकार के हाथों में रहना चाहिए। इसी भाँति शिष्य को भी अपने को निर्मल तथा शुद्ध करना एवं पूर्णतया निर्दोष संगमरमर का प्रस्तर-खण्ड बनाना चाहिए तथा अपने आपको भगवान की मूर्ति के रूप में तराशने के लिए अपने गुरु के कुशल हाथों में छोड़ देना चाहिए।

गुरु पूर्णिमा वह अवसर है, जब आप गुरु भक्ति को पुनर्जीवित करके तथा अपनी अपवित्र इच्छा और अहंकार का सच्चा समर्पण करके साधना शक्ति को अपने अन्दर जागृत कर सकते हैं। आप सभी को भगवान व्यास और सभी ब्रह्मविद्या गुरुओं का आशीर्वाद प्राप्त हो! गुरु भक्ति द्वारा तथा अपने गुरु की शिक्षाओं का सच्चाई एवं लगन से पालन करके आप सभी आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करें!

गुरु परम्परा

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जिस प्रकार सम्पूर्ण विश्व में लोग सन्तों के दिवस मनाते हैं उसी प्रकार भारत में गुरु पूर्णिमा के दिन गुरु दिवस मनाया जाता है। पूर्णिमा की रात्रि में पूर्ण चन्द्र चमकता है और यह आध्यात्मिक अनुभूति की सर्वोच्च अवस्था का द्योतक है जब पूर्ण और घोर अन्धकार में ज्ञान का प्रकाश चमकता है। गुरु वे हैं जो अन्धेरी रात में पूर्ण चन्द्र की तरह चमकते हैं। इसलिये वर्ष में एक बार आषाढ़ पूर्णिमा के दिन, हम एकत्र होकर गुरु पूर्णिमा का उत्सव मनाते हैं तथा अपना सर्वस्व गुरु को समर्पित करते हैं।

हम गुरु पूर्णिमा दो उद्देश्यों से मनाते हैं। पहला, हम स्वयं को अपनी आध्यात्मिक परम्परा का स्मरण दिलाते हैं, और दूसरा, हम उन उच्चतर शक्तियों से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास करते हैं जो आध्यात्मिक विकास में हमारा मार्गदर्शन करती हैं। गुरु वे हैं जिन्होंने अपनी चेतना को पूर्णतया रूपान्तरित कर दिया है। वे भौतिक रूप से इस संसार में रहते हैं, किन्तु उनकी आत्मा सदैव देश और काल के परे उच्चतर आयामों में विचरण करती रहती है। अपने विकास-चक्र को पूरा कर लेने के कारण उनके लिये कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता। फिर भी वे मानवता की चेतना के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये निरंतर कार्य करते रहते हैं।

गुरु परम्परा आधुनिक नहीं है, यह सर्वाधिक प्राचीन परम्परा है। मनुष्य की उत्पत्ति के पूर्व भी प्रकृति के रूप में गुरु का अस्तित्व था जो ऋतुओं, वनस्पतियों और पशु-पक्षियों का मार्गदर्शन करती थी। पाषाण युग के लोगों के गुरु थे, प्रकृतिवादियों तथा मूर्तिपूजकों के भी गुरु थे। जो पशु-बलि देते थे, अमूर्त देवी-देवताओं में विश्वास करते थे तथा जादू-टोना, सिद्धि और अभिचार सीखना चाहते थे, उनके भी गुरु थे। गुरु की परम्परा सिर्फ भारत तक ही सीमित नहीं है। एटलान्टिक सभ्यता में गुरु की संख्या अब तक की किसी भी सभ्यता से अधिक थी। दक्षिण अमेरिका, यूरोप, मिस्र, मेसोपोटामिया, तिब्बत, चीन और जापान में गुरु होते थे। गुरु परम्परा सार्वभौमिक रही है, किन्तु अनेक युद्धों एवं असामयिक विध्वंसों के कारण यह धीरे-धीरे समस्त संसार में विनष्ट हो गयी। भारत को छोड़कर कोई देश इसे सुरक्षित न रख सका।

अत: अब हम सिर्फ भारत में ही गुरु पूर्णिमा मनाते हैं, किन्तु यदि आप प्राचीन दक्षिण अमेरिकन सभ्यता का अध्ययन करेंगे तो आप पायेंगे कि वे भी गुरु पूर्णिमा मनाते थे। हजारों वर्ष पूर्व समस्त संसार में गुरु पूर्णिमा अवश्य मनाई जाती होगी।

गुरु-शिष्य सम्बन्ध निश्चित रूप से मानवीय विकास के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलुओं में से एक है। यह सम्बन्ध समस्त सम्प्रदायों, संगठनों और संस्थाओं का

आधार है, चाहे वे आध्यात्मिक हों या कोई और। जब हम भूतकाल की समृद्ध संस्कृतियों तथा वर्तमान संस्कृतियों के बारे में विचार करते हैं तो पाते हैं कि वे भी इसी महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध पर आधारित रही हैं। कला, विज्ञान और अध्यात्म की समस्त परम्पराएँ, पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुरु से शिष्य को, शिक्षक से छात्र को तथा पिता से पुत्र को हस्तान्तरित होती रही हैं।

गुरु-शिष्य सम्बन्ध मानव अस्तित्व के महत्तर आयामों, श्रेष्ठतर क्षमताओं से सम्बद्ध है। इसके बिना हम बाह्य जगत् की विषमताओं में निराशाजनक रूप से खो जायेंगे। गुरुजनों की सुरक्षात्मक कृपा ही उस आन्तरिक स्रोत की ओर हमारा मार्गदर्शन करती है, जहाँ से हमारी समस्त उच्चतर शक्तियाँ नि:सृत होती हैं। यही कारण है कि महान् गुरुओं और आचार्यों को श्रेष्ठतर संस्कृतियों की आधारशिला माना गया है। उनके ज्ञान और प्रेरणा के बिना न तो परम्पराएँ टिक सकेंगी और न संस्कृतियाँ जीवित रह सकेंगी।

भारत में प्राचीनकाल से आज तक हम गुरुओं और ऋषियों को अपनी सांस्कृतिक परम्परा की शक्ति और प्रकाश मानते रहे हैं। उन्होंने जो कुछ सिखाया तथा वेदों, उपनिषदों और तन्त्रों में जो भी लिखा, वह सारहीन दर्शन नहीं, बल्कि जीवन का एक पूर्ण विज्ञान है। उन्होंने लोगों को संयम, आत्मनियन्त्रण, अन्तर्दृष्टि एवं आत्मज्ञान द्वारा जीवन की पूर्णता प्राप्त करने हेतु प्रेरित किया। इन गुणों का सम्पूर्ण समाज पर शक्तिशाली प्रभाव पड़ता है। यदि सभी लोग इसे अपना लें तो आप अच्छी तरह कल्पना कर सकते हैं कि ऐसी संस्कृति कितनी उन्नत हो जायेगी। हम अवश्य ही अपने को एक आदर्श लोक में पायेंगे।

हमारे ऋषि-मुनियों के मन में ऐसी ही समृद्ध संस्कृति के निर्माण की कल्पना थी। हजारों वर्षों के प्रयोग के बाद उन्होंने एक ऐसी पद्धति का विकास किया, जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पुनर्निर्माण कर सकता है तथा अन्तर्ज्ञान के द्वार खोल सकता है। यह योग विद्या की पद्धति है। जिस प्रकार कुम्हार अपने मिट्टी के बर्तनों को मजबूत बनाने के लिये उन्हें आग में पकाता है उसी प्रकार योग असुरक्षित एवं अतिसंवेदनशील मन को सशक्त बनाता है। यह उसे पूर्ण सबल बनाता है, और इस प्रकार जीवन के झंझावातों का सामना करने के लिये तैयार करता है।

हमारे गुरुओं को यह मालूम था कि अति प्राचीन काल में सम्पूर्ण विश्व में एक समृद्ध संस्कृति फैली हुई थी। वे भी एक विकसित, सुसंस्कृत मानव समाज के निर्माण की कल्पना किया करते थे, किन्तु विपरीत राजनैतिक परिस्थितियों के कारण वे तत्कालीन समाज में योग का प्रचार-प्रसार न कर सके। अत: वे निर्जन वनों और एकान्त स्थानों में समाज से अलग-थलग रहे। किन्तु उन्होंने योग की पद्धति को उस उपयुक्त समय के लिये सुरक्षित रखा जब मानव जाति उसे ग्रहण करने के लिये तैयार होगी।

बीसवीं शताब्दी तक यह परिस्थिति बनी रही। इस शताब्दी के प्रारम्भ होते ही राजसत्ता राजाओं-महाराजाओं के हाथों से जनसाधारण के प्रति हस्तान्तरित होने लगी। लोगों को राज्य और समाज के कार्यों में सहभागी होने की अधिक स्वतन्त्रता तथा अवसर मिलने लगे। इसके साथ ही वे अपने जीवन से सम्बन्धित अधिकाधिक उत्तरदायित्वों को सम्भालने लगे। औद्योगिक क्रान्ति और भौतिक समृद्धि के कारण लोगों में जीवन के प्रति अधिक भौतिकवादी दृष्टिकोण विकसित हुआ, किन्तु आज यह प्रवाह तेजी से विपरीत दिशा में जाने लगा है। अधिकाधिक लोग भौतिकवादी जीवन से तंग होने लगे हैं। वे अपनी समस्याओं के समाधान तथा अधिक उन्नत जीवन पद्धति के लिये योग की ओर देखने लगे हैं।

आज लोग योग के लिये तैयार हो गये हैं तथा यौगिक संस्कृति की पुनर्स्थापना का समय आ गया है। आत्मानुभूति से युक्त अनेक महापुरुष आज लोगों के बीच भ्रमण कर रहे हैं तथा सम्पूर्ण विश्व में योगाश्रमों एवं योग केन्द्रों की स्थापना करके योग को सर्वसुलभ बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

इस प्रकार आज हम एक महान् यौगिक पुनर्जागरण के प्रारम्भ का दर्शन कर रहे हैं। हम मानव जाति की विकास-यात्रा में एक लम्बी छलाँग की तैयारी कर रहे हैं। शीघ्र ही लोग सर्वत्र योग का अभ्यास करने लगेंगे, और जो अभ्यास नहीं भी करेंगे वे इसके बारे में कुछ-न-कुछ अवश्य जानेंगे। निकट भविष्य में ही गुरु पूर्णिमा एक अन्तरराष्ट्रीय त्योहार बन जायेगा। पुरुष, स्त्री और बच्चे स्वयं को गुरु परम्परा एवं भावी यौगिक संस्कृति के प्रति समर्पित करने हेतु सर्वत्र एकत्र होंगे।

संसार, मोक्ष और गुरु

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

तंत्र और योग शास्त्र का मानना है कि सारी सृष्टि चेतना और ऊर्जा की पारस्परिक अन्तर्क्रिया के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। समस्त सृष्टि चेतना और ऊर्जा के विभिन्न रूपों और अभिव्यक्तियों से ही निर्मित है। ऊर्जा को देवी या शक्ति और चेतना को शिव के रूप में देखा गया है। प्राचीनकाल के ऋषि-मुनियों को ज्ञात था कि प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में जो कुछ करता है, वह उसके शरीर, मन और व्यक्तित्व में अन्तर्निहित चेतना और ऊर्जा की अभिव्यक्ति मात्र है। यह चेतना और ऊर्जा ब्रह्माण्डीय चेतना और ऊर्जा से पृथक् नहीं है। मनुष्य में निहित चेतना और ब्रह्माण्ड में व्याप्त चेतना में सम्पर्क रहता है। मानवीय ऊर्जा और ब्रह्माण्डीय ऊर्जा में भी सम्बन्ध रहता है। दूसरे शब्दों में, ब्रह्माण्डीय चेतना और शक्ति ही मानवीय प्रकृति और व्यक्तित्व में सूक्ष्म रूप से समाहित हैं।

शक्ति सक्रिय, गतिशील तत्त्व है तो शिव निष्क्रिय एवं अचल तत्त्व। सृष्टि की प्रक्रिया में ब्रह्माण्डीय स्तर पर चेतना और ऊर्जा का विभिन्न प्रकार से संयोजन-विभाजन होता है। इस प्रक्रिया से जो प्रकट होता है, वह है उच्चतर मन, जिसकी अवधारणा हमें सांख्य सिद्धांत की ओर ले चलती है।

चेतना और ऊर्जा के संयोजन से उत्पन्न उच्चतर मन को महत् भी कहते हैं और यह अहंकार, बुद्धि, चित्त और मनस् – इन चार घटकों से निर्मित है। समन्वित रूप से एक साथ क्रियाशील होने पर ये चारों घटक उच्चतर मन के रूप में पहचाने जाते हैं। इनमें विभेद तभी मालूम पड़ता है जब इनमें से कोई एक प्रबल हो जाता है और उसकी स्वतंत्र अनुभूति होती है। तंत्र के अनुसार ब्रह्माण्डीय स्तर पर शिव और शक्ति अर्थात् चेतना और ऊर्जा, परस्पर सामंजस्य की स्थिति में रहते हैं। वे वस्तुत: एक ही होते हैं। जब दोनों एक-दूसरे से अलग होते हैं, तब सृष्टि प्रारम्भ होती है।

जब ऊर्जा चेतना से अलग होती है, तब उसे अपने बूते पर ही कार्य करना होता है। ऊर्जा के कार्यों का निर्देशन करने वाला कोई नहीं रहता। हमारे गुरुदेव स्वामी सत्यानन्द जी एक उदाहरण दिया करते थे। दो मित्र हैं, एक अंधा है और दूसरा लंगड़ा। दोनों मेले में जाना चाहते हैं। पर जायें तो कैसे? अंधा आदमी देख नहीं सकता पर अच्छी तरह चल-फिर सकता है। लंगड़ा आदमी चल तो नहीं सकता पर अच्छी तरह देख सकता है। दोनों एक-दूसरे की मदद करते हैं। लंगड़ा आदमी अन्धे के कन्धे पर बैठ जाता है और उसे राह दिखाने लगता है। वह कहता जाता है, 'आगे बढ़ो, सामने गड्ढा है, उसका ख्याल रखो, आगे ढाल है, दायें मुड़ो, अब बायें मुड़ो।' अन्धा आदमी उसके कहे अनुसार चलता जाता है। शिव और शक्ति

या चेतना और ऊर्जा की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। तंत्र कहता है कि शिव तत्त्व पंगु है, वह चल नहीं सकता, जबकि ऊर्जा अंधी है, वह देख या सोच-समझ नहीं सकती, पर चल जरूर सकती है।

जब चेतना और ऊर्जा साथ-साथ रहते हैं तब वे सामंजस्यपूर्वक काम करते हैं। उस समय पूर्ण शान्ति और आनन्द की स्थिति रहती है। लेकिन जब वे अलग हो जाते हैं, जब लंगड़ा अंधे के कन्धों पर से उतर जाता है और उसे स्वयं ही काम करना पड़ता है, तब फिर परिस्थिति भिन्न हो जाती है। चेतना अन्तर्मुखी और निष्क्रिय हो जाती है, जबकि शक्ति सक्रिय तत्त्व बन जाती है। जब शक्ति सक्रिय हो उठती है, तब सृष्टि का कार्य प्रारम्भ होता है। इस सृष्टि-प्रक्रिया का प्रथम परिणाम होता है महत्, जो मनस्, बुद्धि, चित्त और अहंकार के चार आयामों से मिलकर बना है।

सृष्टि के क्रम में पंच-तत्त्वों की भी उत्पत्ति होती है। उन्हीं से शरीर का निर्माण होता है। अगर तुम विभिन्न लोगों के व्यक्तिगत स्वभावों का ध्यान से अवलोकन करोगे, तो तत्त्वों की अभिव्यक्ति स्पष्ट हो जायेगी। कुछ लोग वायु-प्रधान होते हैं, तो कुछ अग्नि-प्रधान। कुछ जल-प्रधान होते हैं, कुछ आकाश-प्रधान और शेष पृथ्वी-प्रधान। जब कोई एक तत्त्व प्रबल होता है तब उसकी विशेषताएँ व्यक्ति के व्यवहार में प्रतिबिम्बित होने लगती हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन तत्त्वों ने शरीर का निर्माण किया है और यही तत्त्व इन्द्रियों का सृजन कर संसार से पारस्परिक अंतर्क्रिया करवाते हैं। तत्त्वों के कारण ही मनुष्य अव्यक्त आयाम के बजाय इस व्यक्त आयाम में अवस्थित है। व्यक्त आयाम इन्द्रियों और मन द्वारा ग्राह्य है। तुम किसी पदार्थ का स्पर्श कर उसकी ठोसता का अनुभव कर सकते हो। तुम्हारी

इन्द्रियाँ इस भौतिक जगत् में परिव्याप्त इन्द्रिय-विषयों से पारस्परिक क्रिया करती हैं। तुम्हारा मन बाह्य वातावरण और व्यक्तियों, तथा साथ ही आंतरिक वासनाओं, सम्बन्धों और विचारों से पारस्परिक क्रिया करता है। इन्हीं से जीवन आगे बढ़ता है, इनके बिना तुम आध्यात्मिक चेतना विकसित नहीं कर सकते।

आध्यात्मिक चेतना

आध्यात्मिक ज्ञान धार्मिक ज्ञान से भिन्न है। आध्यात्मिकता का धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है, और न ही धर्म का आध्यात्मिकता से कोई वास्ता है। ये दोनों पूर्णतया भिन्न मार्ग हैं। लोगों का मानना है कि किसी धर्म का अनुसरण करने से व्यक्ति आध्यात्मिक बन सकता है, लेकिन यह मान्यता सही नहीं है। आध्यात्मिक चेतना एक व्यक्तिगत अनुभूति है। जीवन को उन्नत करने का यह व्यक्तिगत प्रयास है। इसलिए आध्यात्मिकता और धार्मिकता में अन्तर अवश्य किया जाना चाहिए।

तांत्रिक और यौगिक दृष्टिकोण से आध्यात्मिक होने का अर्थ है अपने भीतर विद्यमान दिव्य गुणों के प्रति सजग होना। लोग सोचते हैं कि ध्यान का अभ्यास करने से वे आध्यात्मिक बन सकते हैं। यह गलत अवधारणा है। लोग मानते हैं कि कोई धर्म अपना लेने से वे आध्यात्मिक हो सकते हैं। यह भी गलत है। लोग ऐसा भी सोचते हैं कि मंत्र का अभ्यास करने से या ईश्वर का स्मरण और पूजन करने से वे आध्यात्मिक हो सकते हैं। यह भी सही नहीं है। इन सब का आध्यात्मिकता से कोई सम्बन्ध नहीं। ध्यान, चिन्तन, पूजन या ऐसे किसी अन्य प्रयास से तुम आध्यात्मिक नहीं बन सकते। आध्यात्मिकता की खोज अपने भीतर करनी होती है, और यही योग और तंत्र की प्रक्रिया है। आध्यात्मिक आयाम इन्द्रियों और उनके विषयों से परे है। आध्यात्मिक अनुभव शारीरिक और मानसिक अनुभवों से परे हैं।

आध्यात्मिक जीवन की जानकारी जीवन के सामान्य व्यवहारों के अवलोकन और रूपान्तरण से प्राप्त होती है। स्मरण रहे कि चिन्तन, ध्यान, कर्मकाण्ड या पूजा से नहीं, बल्कि स्वधर्म के पालन से व्यक्ति आध्यात्मिक बनता है। प्राय: सभी लोग इस सिद्धांत की उपेक्षा करते हैं। कोई अपने धर्म का पालन नहीं करता, लेकिन हर कोई ध्यान करने का प्रयास अवश्य करता है।

लोग अक्सर मेरे पास आकर पूछते हैं, 'मैं आध्यात्मिक कैसे बन सकता हूँ?' मैं उनसे कहता हूँ, 'सबसे पहले दूसरों की आलोचना करना छोड़ो, अपने मन से नकारात्मकता दूर करो, अपने स्वभाव से हिंसक और आक्रामक प्रवृत्तियाँ हटाओ।' वे आगे पूछते हैं, 'क्या मुझे ध्यान करना चाहिए?' मैं कहता हूँ, 'नहीं। तुम्हें अपने आध्यात्मिक स्वरूप की खोज के लिए ध्यान की आवश्यकता नहीं।' अविश्वास भरी निगाहों से वे मेरी ओर देखते हैं, क्योंकि वे सदा से सुनते आए हैं – 'ध्यान के द्वारा दिव्यता का अनुभव करो।' सब ने उनसे यही कहा है कि जीवन का लक्ष्य

आत्मानुभूति या ईश्वरानुभूति है। यही आशा और अपेक्षा उन्हें अपने अन्दर ईश्वर की खोज करने के लिए प्रेरित करती है। लेकिन भीतर स्थित भगवान की खोज नहीं की जा सकती, विशेषकर उन लोगों द्वारा जो सांसारिक जीवन के दलदल में फंसे हैं। उनमें वह संकल्प शक्ति, उत्साह और मानसिक दृढ़ता नहीं है जिससे यह सम्भव हो सके। इसलिए वे ध्यान तो करते हैं पर ईश्वर-दर्शन या आत्म-साक्षात्कार कभी नहीं प्राप्त कर पाते। उच्च आध्यात्मिक अनुभूतियों की प्राप्ति के लिए किस प्रकार साधनाओं को समन्वित किया जाय, इसकी समझ में एक बहुत बड़ी त्रुटि है।

यह बात सभी पर लागू होती है, चाहे वह संन्यासी हो या गृहस्थ साधक। संन्यास-ग्रहण से कोई आध्यात्मिक नहीं बन जाता, न ही योग किसी को आध्यात्मिक बनाता है। अपने स्वभाव को जानना, अपने व्यवहार को बदलना, अपने स्वधर्म को समझना और उसका अनुसरण करना ही व्यक्ति को आध्यात्मिक बनाता है।

जीवन में सकारात्मक परिवर्तन

तंत्र और योग सदा से निश्चयपूर्वक कहता आया है कि आध्यात्मिक मार्ग व्यक्तित्व के सकारात्मक परिवर्तन का मार्ग है। तंत्र तुमसे अपेक्षा करता है कि तुम एक विधि और मार्ग का अनुसरण कर अपने व्यक्तित्व की गुणवत्ता को बदलो, उसका परिष्कार करो। तांत्रिक पद्धतियाँ जीवन की कठिनाइयों और दु:खों पर विजय प्राप्त करने की विधियों का वर्णन करती हैं। तंत्र में माँ पार्वती भगवान शिव से पूछती हैं, 'मुझे ज्ञान-प्राप्ति की नहीं, बल्कि जीवन के दु:खों और कष्टों से छुटकारा दिलाने वाली विधियाँ बताइये।' तब भगवान शिव उन्हें जीवन के दु:खों से उबरने की प्रक्रिया बतलाने लगते हैं। दु:खों की निवृत्ति के बाद जिस नये मन का अनुभव होता है, वह उच्चतर या ब्रह्माण्डीय मन ही होता है।

इस भौतिक शरीर और संसार में रहते हुए भी यह सब प्राप्य है। नये, परिष्कृत मन को प्राप्त करना सम्भव है, और इसी के लिए तुम्हें प्रयत्नशील होना है। तंत्र स्पष्ट भाषा में कहता आया है कि तुम्हें अपनी कमजोरियों और कमियों से पलायन नहीं, बल्कि उनका सामना करना है। तुम्हारी इन्द्रियाँ और ज्ञान के साधन सीमित हैं; तुम्हारा अहंकार, तुम्हारी स्मृति और बुद्धि स्वतंत्र नहीं, परिस्थितियों द्वारा प्रभावित हैं। तुम इस सीमित दायरे में रहते हुए सुख और दु:ख का अनुभव करते जाते हो, पर अगर इनके अलावा अपने भीतर कुछ और खोजने की इच्छा हो तो साधना की प्रक्रिया से गुजरना आवश्यक है।

सत्-चित्-आनन्द की खोज

मनुष्य को अपने भीतर तीन तत्त्वों या अनुभवों की खोज करनी है। प्रथम अनुभव है सत्। तुम्हें जानना होगा कि यथार्थ क्या है। सभी वस्तुओं में तुम्हें सत्य की खोज

करनी होगी। दूसरा अनुभव है चित्, चेतना का अपनी स्व-आरोपित सीमाओं का अतिक्रमण कर सकने का अनुभव। तीसरा अनुभव है आनन्द, यह अनुभव कि जीवन में न दु:ख है न पीड़ा, केवल आनन्द ही आनन्द है। सत्, चित् और आनन्द तीन अनुभूतियाँ हैं जिन्हें जीवन में खोज निकालना है। इनसे जीवन की यात्रा पूरी होती है, क्योंकि सत्-चित्-आनन्द की अवस्था में सारे द्वैत व्यवहार समाप्त हो जाते हैं। यहाँ आकर सही और गलत की अवधारणाएँ पैदा करने वाले सभी प्रकार के द्वन्द्वात्मक आचार-विचार समाप्त हो जाते हैं, और मनुष्य सत्य, आनन्द एवं उच्च चेतना के आयाम में स्थापित हो जाता है। यही आयाम तंत्र में मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य माना गया है। मनुष्य को यही अर्जित और अनुभव करना है।

तंत्र का सम्पूर्ण विषय वस्तुत: सत्, चित् और आनन्द की खोज ही है। अंतिम सत्य क्या है? किस प्रकार मनुष्य अपनी चेतना को परिष्कृत और विकसित कर स्थायी रूप से आनन्दमय अवस्था का अनुभव कर सकता है? योग, जो तंत्र से ही उपजा विज्ञान है, इसी विचार का अनुमोदन और अनुसरण करता है। जब महर्षि पतंजलि समाधि की चर्चा करते हैं तब वे समाधि का वर्णन किसी निश्चल, निष्क्रिय मानसिक दशा के रूप में नहीं, बल्कि मन के उत्तरोत्तर स्तरों और अवस्थाओं के रूप में करते हैं। इन क्रमिक स्तरों से गुजरते हुए स्थूल मन का अतिक्रमण होता जाता है और व्यक्ति उच्चतर मन में अधिकाधिक स्थापित होता जाता है। चेतना की व्यापकता का अनुभव करने और इस परिवर्तनशील जीवन के पीछे छिपी वास्तविकता को जानने के लिए व्यक्ति को सत्, चित् और आनन्द के मार्ग का अनुसरण करना पड़ता है, और इसी मार्ग का नाम है योग।

संसार का स्वरूप

सांख्य दर्शन सृष्टि के आरम्भ से चले आ रहे क्रम-विकास का निरूपण करता है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, इन्द्रियों, पंचतत्त्वों, पंचतन्मात्राओं और तीन गुणों के परस्पर संयोजन से किस प्रकार इस दृश्य जगत् की संरचना होती है, सांख्य इसकी स्पष्ट व्याख्या करता है। सृष्टि की इन क्रमिक अभिव्यक्तियों के माध्यम से ही जीव अपने संसार से तादात्म्य स्थापित कर पाता है।

यदि तुम्हारे पास इन्द्रियाँ नहीं होतीं, तो तुम अपने वातावरण से कोई सम्बन्ध नहीं रख पाते। उच्चतर मन के बिना तुम मनस्, बुद्धि, चित्त और अहंकार की अभिव्यक्तियों को नहीं समझ पाते। वास्तव में इस जीवन में तुम जिन क्षमताओं से युक्त होकर आते हो, वे केवल तुम्हारे भौतिक जीवन को चलाने के लिए हैं। अगर भगवान तुम्हें पहले दिन से ही शुद्ध-बुद्ध देखना चाहते तो वे तुम्हें तामसिक स्वभाव नहीं देते। वे न तो तुम्हें वासनाएँ और महत्त्वाकांक्षाएँ देते, न ही ईर्ष्या, द्वेष और लालच, बल्कि वे तुम्हें ऐसे सद्गुण देते जो तुम्हें विकास मार्ग पर तेजी से आगे ले जाते।

संसार का स्वभाव ही ऐसा है कि यह चेतना के विकास में बाधक होता है। आध्यात्मिक जीवन में तुम चाहे जितना परिश्रम करो, कोई-न-कोई सांसारिक बाधा हमेशा तुम्हारा रास्ता रोकने का प्रयास करेगी। चाहे वह तुम्हारे परिवार से सम्बन्धित हो या व्यवसाय से, कोई-न-कोई समस्या तुम्हारे मन को संसार की ओर जरूर मोड़ देगी। संसार से सम्पर्क आसक्ति उत्पन्न करता है, और मन एवं इन्द्रियों का स्वभाव ही आसक्त होने का है। इन्द्रियाँ हमेशा सुखद चीजों की खोज करती हैं और दु:खद चीजों को अस्वीकार करती हैं। मन सदा आनन्ददायक और मनोरंजक वस्तुओं को खोजता रहता है। मनोरंजन के अभाव में वह ऊब जाता है। इस तरह तुम्हारे पास जितने भी उपकरण हैं, वे सब संसार से पारस्परिक क्रिया के लिए ही बने हैं।

संसार के निकास-द्वार

यद्यपि मनुष्यों की स्वाभाविक प्रवृत्ति संसार से जुड़ने की है, फिर भी कुछ निकास-मार्ग खुले छोड़ दिये गये हैं ताकि जो व्यक्ति संसार में नहीं रहना चाहते, वे संसार से निकलकर किसी अन्य तत्त्व से जुड़ सकें। जिस तरह हर घर में एक द्वार होता है, उसी तरह संसार से बाहर निकलने का भी एक द्वार होता है। यदि तुम किसी कारणवश घर में नहीं रहना चाहते तो चुपचाप दरवाजे से बाहर निकल जाते हो। उसी प्रकार इस संसार से निकलने के लिए कुछ निकास-द्वार हैं जो तीन तरह से पहचाने जा सकते हैं – पहला, जब तुम्हें अपने अन्दर आनन्द खोजने की तीव्र इच्छा अनुभव हो, दूसरा, जब तुम्हें गुरु की प्राप्ति हो जाए, और तीसरा, जब गुरु तुम्हें चपत जड़ दें। जब तुम से कोई गलती होती है, तब गुरु तुम्हें सुधारने का प्रयास करते हैं और

अगर गुरु में तुम्हारी श्रद्धा, विश्वास और आस्था है, तो तुम उनके निर्देशों के प्रति पूरी निष्ठा रखोगे। निष्ठा और श्रद्धा का भाव निकास-द्वार को और अधिक खोल देता है।

मोक्ष की तीव्र इच्छा

संसार के निकास-द्वार की खोज हेतु सबसे पहले तीव्र इच्छा आवश्यक है। एक बार श्री रामकृष्ण परमहंस के पास एक साधक आया और बोला, 'मैं माँ काली का दर्शन प्राप्त करना चाहता हूँ। आप तो माँ काली से सहज वार्त्तालाप किया करते हैं। आप माँ से क्यों नहीं कहते कि वे मुझे दर्शन दें?' रामकृष्ण ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह व्यक्ति उनसे जिद्द करने लगा पर रामकृष्ण मौन ही रहे। तब तक संध्या हो गई थी। रामकृष्ण उठे और गंगा स्नान के लिए चल पड़े। वह व्यक्ति उनके पीछे-पीछे यह बड़बड़ाते हुए चल पड़ा कि आपने अभी तक मुझे कोई उत्तर नहीं दिया। रामकृष्ण ने कहा, 'आओ, पहले स्नान कर लें, फिर मैं तुम्हें उत्तर दूँगा।'

'वाह! स्नान के बाद मुझे मेरा उत्तर मिल जायेगा,' मन-ही-मन ऐसा सोचते हुए वह साधक पानी में कूद गया। जैसे ही वह पानी में उतरा, रामकृष्ण ने उसकी गर्दन पकड़ी और उसका सिर पानी में डुबा दिया। उस व्यक्ति का दम घुटने लगा। साँस के लिए छटपटाते हुए वह अपने हाथ-पैर पटकने लगा, पर रामकृष्ण उसके कंधे पर सवार रहे। अन्त में वह व्यक्ति इतना उत्तेजित हो गया कि एक झटके में उसने रामकृष्ण को दूर फेंक दिया और मुक्त होकर लम्बी साँस ली। तब रामकृष्ण ने उससे कहा, 'जब माँ के दर्शन की इच्छा इतनी तीव्र हो जायेगी, केवल तभी तुम्हें दर्शन प्राप्त होगा, अन्यथा नहीं।' जो बात उन्होंने उस साधक से कही, वह हम सब पर भी लागू होती है।

कुतूहल और प्रगाढ़ भावना में अन्तर होता है। अधिकांश व्यक्ति कुतूहलवश आध्यात्मिक जीवन के साथ प्रयोग करते हैं – 'चलो देखते हैं यह नई चीज क्या है!' वे भाव की तीव्रता के कारण नहीं आते। अगर तुम्हारी आध्यात्मिक खोज का आधार कुतूहल ही है तो वह बेहद कमजोर आधार है। आश्रम आने के पन्द्रह दिन बाद तुम ऊब जाते हो और कहते हो, 'यह आश्रम अच्छा नहीं है। मैं किसी दूसरे आश्रम में जाकर हठयोग का जमकर अभ्यास करूँगा।' बीस दिन बाद तुम दूसरे आश्रम से भी ऊब जाते हो और कहते हो, 'बहुत हो गया। हठयोग से सारा शरीर दर्द कर रहा है। अब मुझे आयुर्वेद की आवश्यकता है।' अच्छी मालिश के लिए तुम केरल पहुँच जाते हो। जब शरीर कुछ तरो-ताजा और लचीला हो जाता है, तब सोचते हो, 'जब तक मैं इस शहर में हूँ क्यों न थोड़ा-बहुत विन्यास-योग का अभ्यास कर लूँ।' कुछ देर विन्यास-योग का अभ्यास करने के बाद कहते हो, 'यह शिक्षक अच्छा नहीं है। बेहतर होगा कि अब मैं घर चलूँ।'

तुम्हारे जीवन में प्रत्येक सम्बन्ध और कार्य कुतूहलवश ही होता है। यहाँ तक कि लोग संन्यास भी कुतूहलवश लेते हैं। संन्यास के प्रति उनकी कोई श्रद्धा या प्रतिबद्धता नहीं होती। अगर भावना तीव्र होती तो नौसिखिये संन्यासी जिन मानसिक ऊहापोहों से गुजरते हैं, वे कभी नहीं आते। 'ऐसा क्यों, वैसा क्यों नहीं; मैं ही क्यों, तुम क्यों नहीं; तुम्हारे पास जो है वह मेरे पास क्यों नहीं' – इस तरह के ऊहापोह कुतूहल के ही परिणाम हैं। ये एक अत्यंत क्षुद्र मानसिकता को दर्शाते हैं जो हमेशा तुलना और ईर्ष्या करती रहती है। इसलिए इच्छा की तीव्रता प्रथम आवश्यकता है।

गुरु की प्राप्ति

गुरु की प्राप्ति से दूसरे निकास-मार्ग का पता चलता है। अब प्रश्न उठता है कि गुरु की प्राप्ति कैसे हो? क्या अखबार में छपे सबसे बड़े विज्ञापन को देखकर वहाँ फोन लगाना चाहिए? क्या बड़े विज्ञापन वाला गुरु बड़ा है और छोटे विज्ञापन वाला छोटा? अगर सचमुच ऐसा है तो बगैर विज्ञापन वाला गुरु कहलाने लायक ही नहीं!

गुरु वह व्यक्ति है जिससे तुम एक आध्यात्मिक सम्बन्ध का अनुभव करते हो। किसी ने मुझसे एक बार पूछा, 'मैं अभी तक गुरु की तलाश कर रहा हूँ। क्या आप मेरे गुरु बन सकते हैं?' मैंने उल्टा प्रश्न किया, 'पहले यह बतलाओ कि तुम गुरु में क्या खोज रहे हो? क्या तुम लम्बा गुरु चाहते हो या नाटा? मोटा गुरु चाहते हो या पतला? आखिर तुम खोज क्या रहे हो?' उत्तर मिला, 'अनुकूलता।' मैंने पूछा, 'किस प्रकार की अनुकूलता? बौद्धिक अनुकूलता? गुरु से तुम कभी भी बौद्धिक रूप से अनुकूल नहीं हो सकते, क्योंकि उनकी बुद्धि का स्तर तुम से भिन्न है। भावनात्मक अनुकूलता? यह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि गुरु की भावनाएँ तुम से

भिन्न हैं।' तब उस आदमी ने कहा, 'मैं ऐसा व्यक्ति खोज रहा हूँ जो मेरा मार्गदर्शन कर सके।' मैंने कहा, 'किसी मार्गदर्शक की खोज करने से पहले तुम यह जानने का प्रयास करो कि क्या तुम उसके निर्देशों का पालन करने के लिए तैयार हो या नहीं।'

यही वास्तविकता है। गुरु मार्गदर्शक हैं, जो तुम्हें प्रेरित कर सकते हैं, तुम्हारे आध्यात्मिक विकास हेतु तुम्हें निर्देश दे सकते हैं, परन्तु तुम्हें स्वयं अपने जीवन की आवश्यकताओं की उचित समझ और जानकारी होनी चाहिए। गुरु आध्यात्मिक मार्गदर्शक हैं, सामाजिक नहीं। उनका काम शादी-ब्याह रचाना नहीं है। उनसे यह अपेक्षा मत रखो कि वे तुम्हें बतलायेंगे कि किससे शादी करो और किससे नहीं। वे कोई मनोवैज्ञानिक नहीं जो तुम्हारी मानसिक समस्याओं का समाधान दे सकें। वे कोई वित्तीय विशेषज्ञ भी नहीं जो तुम्हारी आर्थिक समस्याओं को सुलझा सकें।

गुरु से सम्बन्ध अत्यंत पवित्र होता है। यह एक अंतरंग सम्बन्ध है, चर्चा या गप्प का विषय नहीं। अगर तुम गुरु द्वारा कही गई बातों और निर्देशों को गप्प में उड़ा देते हो, तो इसका मतलब यही कि गुरु से तुम्हारा सम्बन्ध स्पष्ट नहीं है। ऐसी स्थिति में तुम्हारी बिल्कुल भी प्रगति नहीं होगी। लेकिन अगर तुम इस सम्बन्ध की पवित्रता बनाये रख सकते हो तो एक गहरा और प्रगाढ़ सम्बन्ध विकसित हो सकता है जो न बौद्धिक होगा, न मानसिक और न ही भावनात्मक। यह सम्बन्ध आध्यात्मिक होता है। गुरु और शिष्य के बीच ऐसा ही सम्बन्ध विकसित होना चाहिए क्योंकि इसी से आध्यात्मिक जगत् की ओर ले जाने वाला द्वार खुलता है।

गुरु का तमाचा

अगर तुम अपने जीवन का निष्पक्ष विश्लेषण करोगे तो पाओगे कि तुम्हारा जीवन कुछ ही चीजों के ईद-गिर्द घूमता रहता है। घर-परिवार, यार-दोस्त, नौकरी-पेशा – हर व्यक्ति के जीवन में यही मुख्य चीजें हैं। तुम चाहे जो भी करो, इन चीजों से सम्बन्ध हर समय जुड़ा रहता है। ध्यान में भी परिवार और समाज से एक कड़ी जुड़ी ही रहती है। यह कड़ी कभी टूटती नहीं। यह एक मोटी रस्सी के समान है जो तुम्हें जबरन संसार की ओर खींचती है। दूसरी ओर एक पतला धागा है जो तुम्हें आध्यात्मिक जीवन की ओर खींच रहा है। कौन-सा ज्यादा मजबूत है, रस्सी या धागा? आध्यात्मिक जीवन का पतला धागा बड़ी आसानी से टूट जाता है और संसार से जुड़ी मोटी रस्सियाँ हमें भौतिक धरातल की ओर वापस खींच लाती हैं।

ऐसे समय पर गुरु के तमाचे की जरूरत पड़ती है। गुरु को आकर सतर्क करना पड़ता है, 'सावधान! एक बार फिर अपने लक्ष्य का ख्याल करो, अपने ध्येय को पहचानो।' यदि तुम अपने लक्ष्य के प्रति निष्ठावान् हो तो तुम्हें किसी प्रकार उन रस्सियों को काटना ही होगा, जो तुम्हें भौतिक जगत् की ओर खींच ले जाती हैं।

लेकिन अगर तुम्हारी भौतिक इच्छाएँ बहुत प्रबल हैं तो फिर आध्यात्मिक जीवन को भूल जाओ। सांसारिक जीवन बिताते हुए अपने संस्कारों और कर्मों को भोगो।

जैसे दिन और रात एक साथ नहीं चल सकते, तेल और जल आपस में मिलकर एक नहीं हो सकते, वैसे ही आध्यात्मिक जीवन और सांसारिक जीवन साथ-साथ नहीं चल सकते। जल जल रहता है और तेल तेल। रात रात है और दिन दिन। ये कभी आपस में मिल नहीं सकते। उसी तरह भौतिकता और आध्यात्मिकता हमेशा एक-दूसरे से अलग हैं।

भौतिक मानसिकता में परिवर्तन

भौतिक मानसिकता को बदलना जरूरी है। तंत्र के अनुसार जीवन में सकारात्मक और परोपकारी गुणों के विकास से भौतिक मानसिकता बदली जा सकती है। भौतिक जगत् में सामान्य रूप से क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, लोभ, प्रमाद आदि ही अभिव्यक्त होते हैं। लेकिन आध्यात्मिक चेतना के जागरण के लिए इन नकारात्मक आचरणों का विलीन होना और जीवन के सकारात्मक गुणों का उदय होना आवश्यक है। जीवन की सकारात्मक शक्तियों में प्रेम, करुणा, दया, सहानुभूति और समझ सम्मिलित हैं। मेरे विचार से जीवन की सबसे सकारात्मक शक्ति प्रेम नहीं, समझ-बूझ है। प्रेम केवल एक अभिव्यक्ति है, जबकि समझ एक शक्ति है। आपसी समझ से प्रेम स्वत: आता है। समझ के अभाव में प्रेम रहता भी नहीं। इसलिए समझ मनुष्य द्वारा धारण करने योग्य सर्वोत्तम गुण है।

जब जीवन में सही समझ और स्पष्ट मानसिकता रहती है, तब मनुष्य जीवन में कुछ भी प्राप्त कर सकता है। समझ के अभाव से ही परिवार और समाज की सारी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। दो व्यक्तियों के बीच गलतफहमी पैदा होती है और वहीं से समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इससे क्या पता चलता है? यही कि तुम्हारे स्वभाव का एक अंश कठोर और अनम्य है, वह दूसरों को समझना नहीं चाहता, केवल अपनी इच्छा मनवाना चाहता है। जब तुम बिना सोचे-समझे अपनी ही मर्जी मनवाना चाहते हो, तब ढेरों समस्याएँ और संघर्ष पैदा होते हैं। इसलिए तंत्र कहता है कि समझ ही वह मौलिक सद्गुण है जिससे जीवन में अन्य कोमल, सकारात्मक गुण विकसित होते हैं। आध्यात्मिक चेतना ध्यान से नहीं बल्कि समझ और सहानुभूति को विकसित करने से जागृत होती है। बुद्धि, भावना और कर्म की क्षमताओं को विकसित करने के लिए अपने स्वभाव और व्यक्तित्व के सभी पक्षों को व्यवस्थित करना पड़ता है। तुम अपनी चेतना को कैसे सम्हालते हो; अपने भीतर की ऊर्जाओं को कैसे व्यवस्थित करते हो; अपने मन की प्रतिभा, हृदय की उदारता और हाथों की सृजनशीलता को कैसे विकसित करते हो – इन्हीं बातों से तुम्हारी यौगिक यात्रा का सम्बन्ध है।

गुरु और मन्त्र

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

शिष्य की आध्यात्मिक यात्रा के प्रारम्भ और अधिक उन्नत अवस्थाओं में मन्त्र ही उसके तथा गुरु के बीच सम्पर्क स्थापित करता है। मन्त्र दीक्षा गुरु और शिष्य के बीच के प्रथम महत्त्वपूर्ण सम्बन्धों में से एक है। मन्त्र प्रदान करके गुरु शिष्य के अचेतन एवं अवचेतन मन को प्रभावित करते हैं। मन के इन्हीं क्षेत्रों में मन्त्र निवास करता, श्वास लेता और एक संभाव्य शक्ति बनता है। गुरु साधक के रहस्यमय व्यक्तित्व को सशक्त बनाने के लिये एक मन्त्र का चयन करते हैं और उसे उसके कान में फुसफुसाते हैं। साधना के निर्देश के साथ-साथ एक माला भी दी जाती है। मन्त्र और साधन की शक्ति की सुरक्षा हेतु उन्हें कड़ाई से गुप्त रखा जाता है।

शिष्य को मन्त्र दीक्षा देने वाले गुरु को मन्त्र सिद्धि की शक्ति प्राप्त रहती है। ऐसे व्यक्ति में मन्त्र सचेतन शक्ति के रूप में स्थित होता है और जो मन्त्र शिष्य उनसे प्राप्त करता है, वह अनुभूति का संकेन्द्रित प्रतीक होता है। इसका नियमित रूप से अभ्यास करने के बाद शिष्य चेतना के उसी स्तर तक ऊपर उठ जाता है और अन्त में निपुण साधक के समक्ष मन्त्र की प्रसुप्त शक्ति प्रकट होती है। इसलिए एक साधक के लिये स्मरण रखने योग्य सर्वप्रथम बात यह है कि उसे उन्हीं से मन्त्र ग्रहण करना चाहिये जिन्होंने अपने अन्दर मन्त्र के विज्ञान एवं शक्ति की अनुभूति प्राप्त कर ली है। किसी अन्य स्रोत से मन्त्र प्राप्त करना अनुचित है। यह आवश्यक नहीं है कि एक योग शिक्षक इस शक्ति से युक्त हो। सिद्ध एवं परमहंस महात्माओं ने ही मन्त्र विज्ञान पर अधिकार प्राप्त किया है और वे ही साधकों को दीक्षा देने के योग्य हैं।

प्रत्येक व्यक्ति स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर से निर्मित है। सामान्य मानवीय नेत्रों से स्थूल शरीर को देखा जा सकता है, किन्तु सूक्ष्म और कारण शरीरों को वही देख सकते हैं जिन्होंने आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त कर ली है। चेतना के उस क्षेत्र का उद्घाटन करने के बाद ही कोई साधक अपनी साधना में प्रगति कर सकता है। मन्त्र ही हमारे व्यक्तित्व के इस आयाम का द्वार खोलता है। अत: मन्त्र का चयन हमारे आध्यात्मिक व्यक्तित्व के अनुसार होना चाहिये, न कि हमारे स्थूल व्यक्तित्व के अनुसार।

सामान्य व्यक्ति के लिये आध्यात्मिक शरीर का अस्तित्व एक भावात्मक बात है। हम इसके अस्तित्व को इसलिये स्वीकार करते हैं कि हमने इसके बारे में अनेक पुस्तकों में पढ़ा है, किन्तु हम इसका मानस-दर्शन करने या इसके सार-तत्त्व को समझने में सक्षम नहीं हैं। गुरु के लिये यह सूक्ष्म, आध्यात्मिक शरीर एक जीवन्त वास्तविकता है। वे स्थूल स्तरों को भेदने में सक्षम हैं और वे इसी आधार पर मन्त्र का चयन करते हैं।

साधक को दिया गया मन्त्र उसकी आत्मा को प्रभावित करता है और उस पर एक सकारात्मक छाप छोड़ता है। मन्त्र का अधिक अभ्यास करने से यह प्रभाव भी अधिक होता है और अन्ततः यह शिष्य की सम्पूर्ण चेतना को रूपान्तरित कर देता है। उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व मन्त्र की ध्वनि से प्रतिध्वनित, स्पन्दित एवं अनुकम्पित होने लगता है। हम उसके शरीर के प्रत्येक कोशाणु में इसकी प्रतिध्वनि सुन सकते हैं, यद्यपि वह मौखिक या मानसिक रूप से मन्त्र की आवृत्ति नहीं कर रहा है।

यही वह क्षण है जब शिष्य के अन्दर मन्त्र सजीव हो उठता है। इसके बाद ही वह रूप के पीछे छुपे हुए सार तत्त्व को समझने में सक्षम होता है। वह ईश्वरीय ध्वनि सुनने लगता है। इससे हम मन्त्र के महत्त्व तथा उसमें अन्तर्निहित अनन्त शक्ति को समझ सकते हैं।

मन्त्र ही ब्रह्माण्ड के गहन रहस्यों एवं आपके बीच का सम्पर्क सूत्र है। इसका अर्थ पूर्णत: आध्यात्मिक है और यह प्रत्यक्ष रूप से आपके अस्तित्व के अन्तरतम पक्ष से जुड़ा हुआ है। मन्त्र धीरे-धीरे आपको अधिक गहराई में ले जाता है तथा आपके और आपकी आत्मा के बीच के पर्दों को एक-एक कर हटाता है। जिस प्रकार आप किसी चाकू को लेकर प्याज की परतों को छीलते हैं, ठीक उसी प्रकार मन्त्र भी चेतना के विविध स्तरों पर एक चाकू के रूप में कार्य करता है। सर्वप्रथम स्थूल शरीर को पार करने के बाद यह शनै:-शनै: अधिक से अधिक गहराई में उतरता है और आपके अन्दर निहित माधुर्य एवं परमानन्द से आपका साक्षात्कार कराता है।

आत्मा से एकता स्थापित करने की इस प्रक्रिया में यद्यपि साधक के पास एक उपकरण होता है, तथापि रास्ता दिखाने के लिये उसे एक माध्यम, एक मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है। यह मार्गदर्शक रास्ते के समस्त अवरोधों को हटाता है एवं साधक की आध्यात्मिक यात्रा को सहज एवं निश्चित बनाता है। अन्यथा शिष्य दलदल में आसानी से डूब जा सकता है, क्योंकि यह मार्ग अनेक, अतिभ्रामक खाइयों से भरा हुआ है।

गुरु ही मार्गदर्शक की भूमिका ग्रहण करते हैं। इसीलिये मन्त्र को गुरु एवं शिष्य के बीच की कड़ी माना जाता है। संक्षेप में, इसी कारण से साधक को एक ऐसे गुरु से मन्त्र प्राप्त करना चाहिये जो उसकी आत्मा को प्रभावित करने में सक्षम हों ताकि वे भी शिष्य के साथ उसके अन्तिम कदम तक यात्रा कर सकें।

कई बार यह तर्क उपस्थित किया जाता है कि यदि मन्त्र सिर्फ एक ध्वनि है तो किसी भी ध्वनि की आवृत्ति से इच्छित प्रभाव उत्पन्न होना चाहिये। मन के स्तरों का अतिक्रमण करने के लिये व्यक्ति आसानी से 'कोका-कोला, कोका-कोला' या 'टिक्-टिक्-टिक्-टिक्' की आवृत्ति कर सकता है। इस सम्बन्ध में मैं जोर देकर कहती हूँ, 'नहीं'। ऐसा निरर्थक तर्क देने वाले लोग अभी भी जीवन के स्थूल सुखों के क्षेत्र में ही हैं और उनमें उनका अतिक्रमण करने की इच्छा का अभाव है। 'कोका-कोला, कोका-कोला' जैसी किसी ध्वनि पर ध्यान करने से ब्रह्माण्डीय रहस्यों का उद्घाटन कदापि नहीं हो सकता। अधिक-से-अधिक यह आपको रोबोट के जैसे निकम्मेपन की स्थिति में ले जा सकता है। यह तर्क कितना मूर्खतापूर्ण है, इसे एक बच्चा भी समझ सकता है।

मन्त्र का सम्बन्ध आपके स्थूल शरीर से नहीं है, बल्कि यह तो वह आहार है जो आपके आध्यात्मिक शरीर का पोषण करता है। आप अपने स्थूल, भौतिक शरीर को तुष्ट करने के लिये अन्न खाते एवं कोका-कोला पीते हैं। ठीक इसी प्रकार आप अपनी आत्मा को मन्त्र रूपी भोजन खिलाते हैं ताकि यह विकसित होकर एक जीवन्त अनुभव बन सके।

CENTRES
AT MUNGER, BIHAR
Satyananda Yoga-Bihar Yoga Tradition
Bihar School of Yoga – 1963
Yoga Research Foundation – 1984
Bihar Yoga Bharati – 1994
Math – 1984

मन्त्र सामान्य लौकिक शब्द नहीं होते। उनके उच्चारण से उच्च चेतना के क्षेत्र में प्रवेश संभव हो जाता है। ध्वनि की आवृत्तियों के निर्धारण में उनके सही संयोजन एवं शब्दों के समुच्चय की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण होती है। उदाहरण के लिये, संगीत एवं शोरगुल की रचना ध्वनियों से होती है। अत: कोई यह तर्क कर सकता है कि समस्त शोरगुल संगीत है, किन्तु हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि संगीत वैसे स्वरों का सुरीलापन है जो समस्वर ध्वनि उत्पन्न करने हेतु आपस में जुड़े होते हैं। ऐसा शोरगुल जो स्वर माधुर्य या सुरीलापन न उत्पन्न कर सके, संगीत नहीं है। इसी प्रकार वे शब्द जो मन्त्र के लिये आवश्यक आवृत्तियाँ प्राप्त नहीं कर सकते, जो व्यक्ति के आध्यात्मिक एवं सूक्ष्म शरीर से सम्बद्ध नहीं हैं, मन्त्र की श्रेणी में नहीं आ सकते।

लोहे की चदरों से कार का निर्माण होता है, लेकिन जब हम लोहे की साधारण चदरों को देखते हैं तो क्षण भर के लिये भी यह कल्पना नहीं कर सकते कि हमारे सामने एक कार खड़ी है। जब लोहे की उन चदरों को जोड़कर एक विशेष ढंग से आपस में सम्बद्ध किया जाता है और अन्य धातुओं के साथ उनका सही संयोजन और समन्वय स्थापित किया जाता है, तभी कार का निर्माण होता है, अन्यथा नहीं। मन्त्रों की रचना भी अक्षरों एवं शब्दों के सही संयोजन से ही होती है।

अत: मन्त्र अनन्त आवृत्तियों से युक्त ध्वनियों के प्रतीक हैं, जिनकी अनुभूति ऋषियों ने ध्यान की गहरी अवस्थाओं में प्राप्त की है। युगों से उन पर प्रयोग और परीक्षण होते रहे हैं। शिष्यों को दासता की बेड़ियों से मुक्त करने के लिये गुरु उन्हें मन्त्र प्रदान करते रहे हैं।

आपके लिये कौन-सा मन्त्र सर्वाधिक उपयुक्त है, यह निश्चित करने के लिये आप किसी गुरु से अवश्य सलाह लें। इसके दो कारण हैं – आपके अन्दर क्रियाशील सूक्ष्म शक्तियों की जानकारी सिर्फ उन्हें ही है, और उन्हें ही मालूम है कि आपकी आध्यात्मिक यात्रा की दिशा क्या होनी चाहिये। यन्त्रों और प्रतीकों के सम्बन्ध में भी यह बात सही है। यन्त्र एवं मन्त्र उन जीवन्त, आदर्शात्मक प्रभावों के प्रतीक हैं, जो आपके आन्तरिक व्यक्तित्व का निर्धारण करते हैं। इन प्रभावों का अतिक्रमण करने के लिये एवं प्रबोधन में सहायक के रूप में आपको इन दो पद्धतियों का उपयोग करना चाहिये।

गुरु ही मिट्टी-परीक्षण के बाद आपकी चेतना के बाग में मन्त्र और यन्त्र का बीज बोते हैं। बीज के अंकुरित होने एवं विकसित होकर सुगन्धित अनुभवों में पुष्पित होने के लिये यह आवश्यक है कि आप सभी स्तरों पर गुरु के साथ मजबूत सम्बन्ध स्थापित करें। ऐसा होने से वे बीज के विकास के प्रत्येक स्तर पर उसका परीक्षण कर सकेंगे एवं उसके फूलने-फलने के मार्ग में बाधा उपस्थित करने वाले आसन्न संकटों को दूर कर सकेंगे।

शिव का प्रेरक पत्रादेश

सत्यव्रत जी ने 23 मई 1957 को स्वामी शिवानन्द जी से मंत्र दीक्षा ली, जुलाई में गुरु पूर्णिमा का प्रसाद रूपी पत्र मिला।

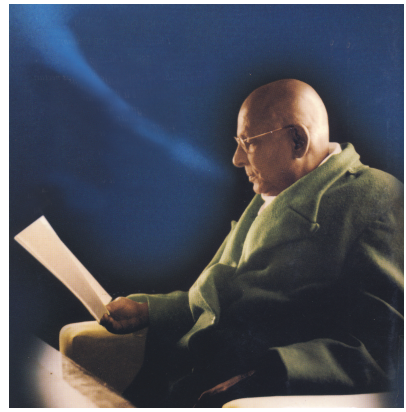

ओजस्वी अमर आत्मा!

तुम सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो, अत: तुम्हें समझना कठिन है। तुम्हारे अतिरिक्त कुछ है भी तो नहीं। तुम निर्मल और निराकार हो। तदपि तुम गुण और रूप के स्वामी हो। तुम्हें मेरा सतत् नमन।

मनुष्यों में पूर्णता प्राप्ति की अविरल महत्त्वाकांक्षा के कारण की तुम कैसे व्याख्या करोगे, यदि पूर्णता का अस्तित्व ही न हो। इस निरन्तर परिवर्तनशील जगत् का मूल्य ही क्या हो, यदि वह स्थिर अविचल सत्य की कल्पना पर आधारित न हो। इस सतत् परिवर्तनशील और नश्वर विश्व में तुम स्थायी शान्ति की आवाज क्यों उठाते हो? क्या इस सदा मरणशील तथा नित्य क्षीणकाय क्षुद्र संसार को आश्रय देने वाला अमर और शाश्वत स्वरूप ईश्वर विद्यमान नहीं है?

इस दृश्य जगत् के पीछे, भौतिक सृष्टि के परे, नाम और रूप के परे, विचार संवेगों और भावनाओं के पार्श्व में वह मौन साक्षी निवास करता है। हमारा सनातन मित्र और शुभ चिन्तक वह पुरुष या जगत् गुरु, अदृश्य शासक, अज्ञात योगी, अन्तर्यामी शक्ति अथवा गुरु ऋषि है। वह एकमात्र स्थायी तत्त्व और जीवित सत्य है। मानव जीवन का उद्देश्य इस परिवर्तनशील सृष्टि के परे सत्य की अनुभूति प्राप्त कर लेना है। उस तत्त्व के साथ एकता ही मनुष्य की सारी प्रवृत्तियों और जीवन का सत्य है।

कठिन संघर्ष के पश्चात् तुम उस परम तत्त्व से एकता प्राप्त करने में सफल बनो। ईश्वर तुम्हें सुन्दर स्वास्थ्य, दीर्घ जीवन, अनन्त शान्ति, अशेष समृद्धि और वर्तमान जीवन में ही आत्मानुभूति का वरदान प्राप्त करावें।

तुम्हारा स्वात्मन्
शिवानन्द

भावना का भक्ति में रूपान्तरण

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

भावना को भक्ति में बदलने के लिये केवल बौद्धिक प्रयास नहीं किया जाता, बल्कि अपनी परिस्थितियों को भी बदलना चाहिए। सबसे अच्छा है कि किसी ऐसे आश्रम में चले जाना चाहिए, जहाँ हम अपनी भावनाओं को भक्ति का रूप दे सकें। भावना को भक्ति का रूप देने के लिये पहले साँचा तैयार करना पड़ता है, वह साँचा है, गुरु। अपनी भावना को भक्ति के रूप में ढालने के लिये पहले गुरु के साथ भावनात्मक रूप से भक्ति का सम्बन्ध होना चाहिए। जब गुरु और शिष्य में विश्वासपूर्ण सम्बन्ध होता है, एकमनस्कता आती है, तब उसके बाद भक्ति गहरी होती है।

गुरु भक्ति वास्तव में ईश्वर के प्रति की जाने वाली भक्ति ही होती है। सब धर्मशास्त्रों में, उपनिषदों में और सत्पुरुषों ने यही कहा है। इसमें सबसे कठिन चीज है गुरु का चयन। गुरु आखिर मनुष्य होता है, जैसे पाँच भूतों से तुम्हारे शरीर का निर्माण हुआ है, वैसे ही उसका भी होता है। जैसे तुम त्रिगुणात्मक सृष्टि में रहते हो, वैसे ही वह भी त्रिगुणात्मक सृष्टि में रहता है। स्वाभाविक रूप से वह पूर्ण नहीं हो सकता, यह पहली बात शिष्य को समझनी होगी। अगर शिष्य समझता है कि गुरु में वह हर समय सम्पूर्णता देखे, तो वैसा नहीं हो सकता। गुरु तो गुरु, कृष्ण में भी दोष दिखाई देगा, राम में दोष दिखाई देगा, और दोष होता भी है –

काजल की कोठरी में कैसोहू सयानो जाय।
एक दाग वाहु को लागिहै पै लागिहैं॥

गुरु बनाने के लिए इस बात का हमेशा ध्यान रखना, हर मनुष्य का एक स्वभाव होता है, वह स्वभावत: आदर्शवादी होता है। मतलब उसके सामने कुछ आदर्श होते हैं, वह उन आदर्शों को ही देखना चाहता है। तुम मुझमें अपना ही प्रतिबिम्ब देखना चाहते हो। तुम्हारे अंदर जो आदर्श है, तुम उसका प्रतिबिम्ब मुझमें देखना चाहते हो। तुम्हारे अंदर आदर्शवाद की जो भावना है, या कुण्ठा है, वह तुम मुझमें देखना चाहते हो, देख नहीं पाते हो। हम सौ प्रतिशत खरे उतर ही नहीं सकते, क्यों? इसलिए कि तुम्हारा जो आदर्श है, कोई कुण्ठा है, उस एक मनोवैज्ञानिक बाधा को तुमने अपने अंदर तैयार कर लिया है। पता नहीं तुम्हें मेरी बात ठीक से समझ में आ रही है या नहीं।

तुम्हारे मन में जो यह चीज है उसे मनोविज्ञान में कुण्ठा कहते हैं। वह तुम्हारे व्यक्तित्व की बाधा है। हर मनुष्य अपने लक्ष्य को, अपनी पसंद को देखता है और यह देखता है कि वह पसंद अपने को वहाँ मिलती है कि नहीं। अब दुकान में साड़ी

खरीदने के लिए गये। देखते हो कि बेचने वाला ब्राह्मण है कि बनिया। तुम्हें ब्राह्मण या बनिया से क्या मतलब? तुम अच्छी साड़ी खरीदना चाहते हो, पर साथ ही यह भी चाहो कि बेचने वाला आदमी भी बुड्ढा होना चाहिए, ब्राह्मण कुल का होना चाहिए, न लम्बा होना चाहिये न छोटा होना चाहिए। इसे हम लोग आदर्शवाद कहते हैं। आदर्शवादी आदमी अपने मन में एक बाधा तैयार कर लेता है। वह बाधा वह अपनी सुरक्षा के लिए तैयार करता है, क्योंकि मूलत: हर आदमी असुरक्षित है। मनुष्य के अंदर चार मूल प्रवृत्तियाँ हैं – आहार, निद्रा, भय और मैथुन। भय का मतलब असुरक्षा। असुरक्षा का भाव सब लोगों में विद्यमान है। इसलिए गुरु को खोजते समय यह एक चीज देखनी पड़ती है।

गुरु आश्रम

जब हम ऋषिकेश गये तो पहले हम कैलाश आश्रम गये थे। हमने कहा, हम संन्यास लेंगे, तो विष्णुदेवानन्द जी ने कहा कि हम तो संन्यास नहीं देते, पर जब तुम संन्यास लोगे उस समय हम हाजिर रहेंगे। तुम स्वामी शिवानन्द जी के पास चले जाओ। अच्छे साधु हैं, पढ़े-लिखे आदमी हैं, तुम भी पढ़े-लिखे हो।

हम वहाँ गये। हमने स्वामीजी को देखा, उनसे कहा कि हम आपके यहाँ रहने के लिये आए हैं। उन्होंने कहा, 'ठीक है, रहो। सबसे पहले अपना आईना साफ करो। और जो कुछ तुम पाना चाहते हो वह तो तुम्हारे अंदर है, मेरे अंदर थोड़े ही है।' गुरु कुछ थोड़े ही देता है, समझ रहे हो न? उस शिला का देव मिथ्या है, सत्य

जो है वह तुम्हीं हो। आत्मा, सत्य अपने अंदर है। चेतना अपने अंदर है। ज्योति अपने अंदर है। जो चीज है, वह अपने अंदर है।

या घट भीतर सात समन्दर कोई मीठा कोई खारा।
या घट भीतर नौ लख मोती कोई पन्ना कोई हीरा।
या घट भीतर सर्जनहारा, अवधू अन्धा धुँध अँधियारा॥

अंधकार के परे एक प्रकाश होता है, वह अपने अंदर होता है। इतना भर देख लेना कि गुरु के साथ गाँठ बँध जाये, बस। अब वह गुरु दो-तीन बार चाय पीता है, वह गुरु चमड़े का जूता पहनता है, वह गुरु दिन में सोकर खर्राटे मारता है – यह सब क्यों देखते हो? जब दिल लग गया, तब दिमाग का काम नहीं होता। जब दिल लग गया, जब मुहब्बत हो गई, तब दिमाग को बीच में नहीं आने देना, नहीं तो वह सब गड़बड़ कर देगा। इसलिए भावना को भक्ति के रूप में बदलने के लिये गुरु के साथ सम्बन्ध जोड़ो।

गुरु सेवा

गुरु की सेवा अनेक प्रकार की होती है। भगवान श्रीकृष्ण संदीपनी के यहाँ लकड़ी इकट्ठा करते थे। कहानी मालूम है न आप लोगों को? इसी तरह श्रीराम वशिष्ठ जी के यहाँ रहते थे। रामजी अयोध्या के राजकुमार थे। वशिष्ठ गुफा ऋषिकेश से सोलह मील आगे ब्रह्मपुरी के पास है। गंगा के ठीक किनारे शत्रुघ्न जी रहते थे, जहाँ स्वामी शिवानन्द जी का आश्रम है, उसकी बगल में। भरत जी ऋषिकेश में ही रहते थे। जहाँ लक्ष्मण झूला है, वहाँ लक्ष्मण जी रहते थे। वहाँ आर-पार जाने के लिए लक्ष्मण झूला है। चार भाई, चार जगह रहते थे और वशिष्ठ जी रहते थे, वहाँ से सोलह मील दूर। त्रेता युग में भगवान राम के अगल-बगल कितने शेर-बाघ घूमते होंगे! गुरु के साथ ऐसा जीवन बिताया जाता है। रामजी ने गुरुजी के साथ अपना जीवन बिताया, खुर्पी लगायी, गाय-बैलों की सेवा की, आश्रम के लिए लकड़ी चुनी। हो सकता है कि अरुंधती के कपड़े भी धोये होंगे, क्या मालूम? यह सब जरूर हुआ होगा। सब कुछ किया होगा, सेवा की होगी। रोज वहाँ जाते होंगे, घोड़े पर थोड़े ही जाते होंगे। गुरु आश्रम में गुरुकुल में रहने पर उनको आश्रम के नियमों का पालन करना पड़ता होगा, जमीन पर सोना पड़ता होगा। प्राचीन काल में ये सब नियम थे। वही कठिन जीवन था श्रीराम जी का, जो उन्होंने अपने गुरुजी के आश्रम में पाया – *गुरुगृह पढ़न गये रघुराई, अल्पकाल विद्या सब पाई।*

जिसके मुँह से वेद और श्रुतियाँ निकलती हैं, वह भी लीला करने के लिए संसार में पढ़ने जाता है। पढ़ने का नाटक करता है। बाद में जब रामचन्द्र जी का वनवास हुआ तब उस वनवास में उन्हें जितना कष्ट था वह कुछ महसूस ही नहीं हुआ, क्योंकि

गुरु आश्रम की तपस्या जीवन के कष्ट को हल्का बना देती है। गुरु के आश्रम की जो तपस्या है, जो सेवा है, वह ऐसी होती है कि जीवन में आने वाले जो कई प्रकार के कष्ट होते हैं, दु:ख रूपी कष्ट होते हैं, गरीबी का कष्ट होता है, भूख कष्ट देती है, प्यास कष्ट देती है, रोग कष्ट देता है, निन्दा कष्ट देती है, वे सब हल्के पड़ जाते हैं।

भावना को भक्ति में बदलना बच्चों का खेल नहीं है। मीराबाई की भावना भक्ति में बदली, क्योंकि वे बहुत भोली थीं। उन्होंने बुद्धि का उपयोग नहीं किया। उन्होंने भावना का ही उपयोग किया। अगर बुद्धि का उपयोग करतीं तो कहतीं, 'अरे! लकड़ी की मूरत कैसे मेरा पति हो सकती है?'

लकड़ी की मूरत कैसे पति हो सकती है, यह बुद्धि कहती है, पर उन्होंने कृष्ण जी को बचपन से ही, जब उन्हें वह मूरत दी गयी थी, तब से ही अपना पति मान लिया था। जिसके साथ शादी होती है उसे कहते हैं पति। जिसके साथ औरत जीवन भर रहती है, उसे कहते हैं, पति। अब उन्होंने अपनी भावना को भक्ति में बदल दिया और वे सफल भी हुयीं। जब भावना भक्ति में बदलती है तब बहुत शक्तिशाली हो जाती है – *विष का प्याला राणा भेज्याँ पीवाँ मीरा हाँसी री।*

वह कहानी तो आपको मालूम है। उनके जीवन में एक चमत्कार हो गया। चैतन्य महाप्रभु के साथ भी ऐसा हुआ। वे तो बुद्धिजीवी थे। न्यास शास्त्र के आचार्य थे, डॉक्टरेट थे, जिसे आजकल पी.एच.डी. कहते हैं। न्याय शास्त्र पर तो उन्होंने शोध-पत्र लिखा था। इतने बुद्धिमान थे। लेकिन उन्होंने अपनी बुद्धि को किनारे रखकर भगवान के साथ जो सम्बन्ध जोड़ा, वह सम्बन्ध कोई दिमाग वाला नहीं जोड़ सकता। चैतन्य महाप्रभु ने श्रीकृष्ण के साथ जो सम्बन्ध जोड़ा, वह खोपड़ी में तो नहीं अँटता है। सीधी-सादी बात है। न मीरा की भावना हमारे दिमाग में अँट सकती है, न चैतन्य महाप्रभु की, और यहाँ तक कि परमहंस रामकृष्ण जी की भी काली के प्रति जो भावना है, वह भी बुद्धि का विषय नहीं है। इसलिए भावना को भक्ति में बदलने के लिए पहले तो बुद्धि को सेवानिवृत्ति दे दो, उसे बर्खास्त करा दो।

श्री अरविन्द ने यह स्पष्ट लिखा है कि बुद्धि और तर्क एक बाधा है। तर्क-वितर्क और बुद्धि-विलास, ये सब आध्यात्मिक जीवन में नहीं चलते। क्यों नहीं चलते? इसलिए कि जिसे तुम खोज रहे हो उसे तो किसी ने देखा ही नहीं है। तुम्हारे पास कोई प्रमाण नहीं है,

तुम्हारे पास कोई चार्ट भी नहीं है कि भाई इस रास्ते से जाओ, कोई टाईम-टेबल नहीं है, कोई रास्ता मालूम नहीं है। भगवान स्त्री है कि पुरुष है, आदमी है कि जानवर है, भगवान है कि नहीं है। शून्य है तो क्या चीज है। शून्य क्या है? बोलो, समझाओ। उन्हें निर्गुण भी कहते हैं। निर्गुण का क्या मतलब होता है?

भगवान तर्क का विषय नहीं है। भगवान बुद्धि का विषय नहीं है। भगवान भावना का विषय है और वह भावना भक्ति में परिवर्तित हो जाती है। *सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा* – परम प्रेम भक्ति का स्वरूप है। भक्ति केवल प्रेम नहीं, परम प्रेम है। पी ले पी ले हरि नाम का प्याला, उसको पीकर और पिलाकर बन जा तू मतवाला! मतवाला! मतवाला! वह परम प्रेम है, जिसे पीकर और पिलाकर बन जा तू मतवाला। यहाँ तीन बार मतवाला कहा है, केवल एक बार हल्का मतवाला नहीं, मतवाला का मतलब पी लिया और शराब पीकर जमीन में गिर गया। शराब पीकर तो ऐसा ही होता है न, तीसरी अवस्था में दीन-दुनिया की कोई खबर नहीं रहती है।

प्रवृत्ति और निवृत्ति

अगर दिल भगवान में रमने लगा और घर-गृहस्थी करनी ही नहीं है तो फिर घर-गृहस्थी में रहना ही क्यों? मुझे तो समझ में ही नहीं आता है। घर-गृहस्थी करनी हो तो रहो, फिर वह रास्ता दूसरा है। शादी करो, बच्चा पैदा करो, यह करो तो वह करो। वह भी एक रास्ता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि दो निष्ठाएँ हैं –

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥3.3॥

अर्थात् इस लोक में दो प्रकार की निष्ठाएँ मेरे द्वारा पहले कही गयी हैं। उनमें से सांख्य योगियों की निष्ठा तो ज्ञान योग से और योगियों की निष्ठा कर्म योग से होती है। एक प्रवृत्ति मार्ग है, दूसरा निवृत्ति मार्ग है। जब शादी करनी ही नहीं है, किसी तरह कमाना ही नहीं है तो प्रवृत्ति मार्ग में आदमी क्यों रहे? और निवृत्ति मार्ग में जाकर फिर प्रवृत्ति करे। आखिर हम भी तो इतने साल प्रवृत्ति में रहे, मगर यह प्रवृत्ति निवृत्तिमय प्रवृत्ति थी। निवृत्तिमय प्रवृत्ति का जीवन पर कुछ असर नहीं पड़ता, बीज नहीं बनते, कर्म नहीं बनते और भावना का अपने आप धीरे-धीरे कायाकल्प होता है।

यह संक्षेप में कहा, नहीं तो यह बहुत बड़ा विषय है। हमारे शास्त्रों में भक्ति मार्ग के विषय में यही तो लिखा हुआ है। आखिर भावना को पारिभाषित करो कि भावना क्या है, भावना का क्या रूप है? भावना को कैसे पारिभाषित करोगे? हृदय का मतलब क्या होता है? इसलिए एक ही चीज है, 'जब मन में वैराग्य का भाव उदय हो, उसी समय मनुष्य को संसार त्याग देना चाहिए, नहीं तो मन फिर उलट जायेगा।' यह उपनिषद् का वाक्य है।

यह वैराग्य बहुत ऊँची चीज है। यह मन में जागे तो किसी आश्रम में जाकर रहना चाहिए। हिन्दुस्तान में अनेक अच्छे आश्रम हैं। हमारे यहाँ आश्रम में शिष्य को पूजा-पाठ करने की जरूरत नहीं, दिन-रात केवल सेवा, ताकि मन न यहाँ रहे न वहाँ रहे। अधर में लटका रहे। स्वामी निरंजन का मन कहाँ रहता है? बेचारे का मन अधर में लटका रहता है। उसके मन में एक पैर रखने को जगह ही नहीं मिलती। पैर रखते ही उसका कर्तव्य आ जाता है। याने एक छोटा-सा उदाहरण दे रहा हूँ। और हमारा भी ऐसा ही हाल था। हमें तो बहुत साल तक यह पता ही नहीं चला कि हमारा मन है। इसीलिये आश्रम में सेवा, शारीरिक श्रम होता है। छोटी-से छोटी सेवा भी महान् से महान् वरदान देती है।

चैतन्य महाप्रभु का उदार भाव

चैतन्य महाप्रभु उन दिनों नवद्वीप में निमाई के नाम से ही जाने जाते थे। उनकी अवस्था केवल सोलह वर्ष की थी। व्याकरण की शिक्षा समाप्त करके उन्होंने न्यायशास्त्र का गहन अध्ययन किया और उस पर एक ग्रंथ भी लिख रहे थे। उनके सहपाठी पं. रघुनाथ जी उन्हीं दिनों न्याय पर अपना 'दीधिति' नामक ग्रंथ लिख रहे थे जो आज इस विषय का प्रख्यात ग्रंथ माना जाता है।

पं. रघुनाथ जी को पता लगा कि निमाई भी न्याय पर कोई ग्रंथ लिख रहे हैं। उन्होंने उस ग्रंथ को देखने की इच्छा प्रकट की। दूसरे दिन निमाई अपना ग्रंथ साथ ले आये और पाठशाला के मार्ग में जब दोनों साथी नौका पर बैठे तब वहीं निमाई अपना ग्रंथ सुनाने लगे। उस ग्रंथ को सुनने से रघुनाथ पंडित को बड़ा दु:ख हुआ। उनके नेत्रों से आँसू टपकने लगे।

पढ़ते-पढ़ते निमाई ने बीच में सिर उठाया और रघुनाथ को रोते देखा तो आश्चर्य से बोले, 'भैया! तुम रो क्यों रहे हो?' रघुनाथ ने सरल भाव से कहा, 'मैं इस अभिलाषा से एक ग्रंथ लिख रहा था कि वह न्यायशास्त्र का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ माना जाये, किन्तु मेरी आशा नष्ट हो गयी। तुम्हारे इस ग्रंथ के सम्मुख मेरे ग्रंथ को पूछेगा कौन?'

'बस, इतनी सी बात के लिये आप इतने संतप्त हो रहे हैं!' निमाई तो बालकों के समान खुलकर हँस पड़े, 'बहुत बुरी है यह पुस्तक, जिसने मेरे मित्र को इतना कष्ट दिया!' रघुनाथ कुछ समझें, इससे पूर्व निमाई ने अपने ग्रंथ को उठाकर गंगाजी में बहा दिया! उसके पन्ने भगवती भागीरथी की लहरों पर बिखर कर तैरने लगे।

रघुनाथ के मुख से कुछ क्षण तो एक शब्द भी नहीं निकला और फिर निमाई के पैरों पर गिरने को झुक पड़े, किन्तु निमाई की विशाल भुजाओं ने उन्हें रोककर हृदय से लगा लिया था।

आज्ञाकारिता और पात्रता

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

भौतिक स्तर पर गुरु का अपना एक शरीर है, बुद्धि है, मस्तिष्क है, लेकिन उसके भीतर एक और तत्त्व जागृत है, जिसे हमलोग कहते हैं गुरु-तत्त्व। उस तत्त्व से सम्बन्ध जोड़ने के लिए अपनी पात्रता को बढ़ाना जरूरी है। पात्रता को बढ़ाने का केवल एक मार्ग है – वैचारिक स्पष्टता और निर्देशों का पालन।

समझाने के लिए एक उदाहरण देते हैं। अगर किसी को कहा जाए कि तुम जाकर उस व्यक्ति को हमारी ओर से कोई कड़वी बात कह दो, तो स्वत: मन में प्रश्न उठने लगेंगे कि 'ऐसी कड़वी बात कहने के लिये मुझे कहा गया है, यह उचित नहीं है, ऐसा नहीं होना चाहिए। मुझसे बुरा कर्म कराया जा रहा है, पापकर्म कराया जा रहा है।' उसी व्यक्ति में दूसरे प्रकार के विचार भी उठ सकते हैं कि 'ठीक है, मुझे ऐसा बोलने के लिए कहा गया है, इसके पीछे जरूर कुछ कारण होगा। हो सकता

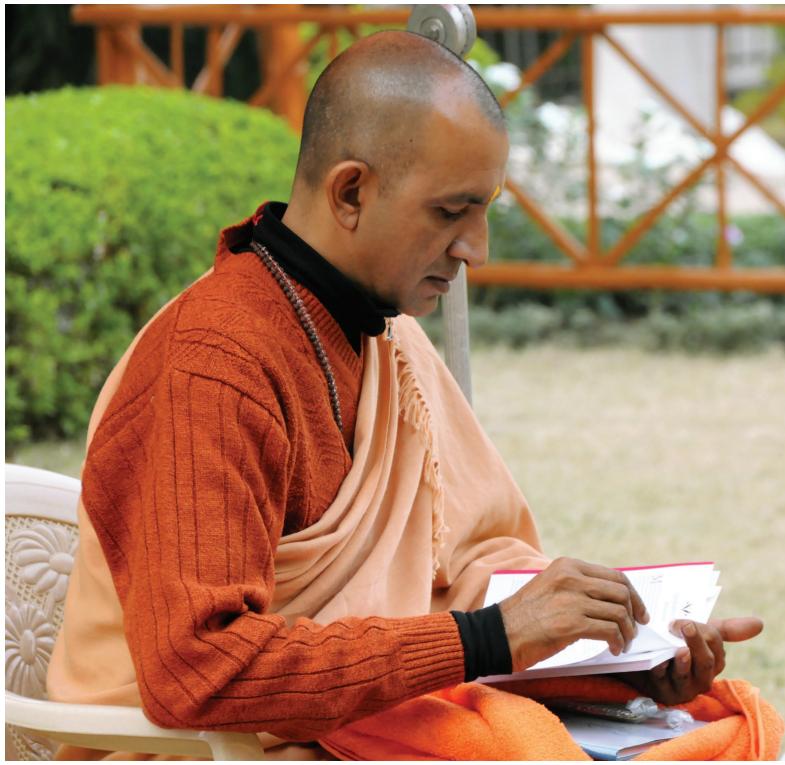

है कि इसमें किसी दूसरे का हित छिपा हो। हो सकता है कि मेरा ही हित छिपा हो, जिसके बारे में अभी मैं अनभिज्ञ हूँ।' और गुरु के प्रति आपका जो विश्वास रहता है, उसी विश्वास के बल पर आप जाकर वह बात कह देते हैं और जब आपने कह दिया, तब फिर स्वतन्त्र हो गये, क्योंकि उस समय आपने अपने को कर्त्ता के रूप में नहीं, बल्कि पोस्टमैन के रूप में देखा। पोस्टमैन आता है, चिट्ठी देता है, काम खत्म। अब चिट्ठी में अच्छी खबर हो या बुरी खबर, उससे उसको क्या लेना-देना। अगर पोस्टमैन यह सोचने लगे कि इसमें तो बुरी खबर है, मैं इसको नहीं दूँगा, क्योंकि उसको दु:ख होगा, तो फिर वह अपने कर्तव्य से च्युत हो जाएगा। उसका विचार उसे अपने कर्तव्य से च्युत कर देगा और उसका खबर नहीं देना दूसरे के लिये और भी हानिकारक होता है। हाँलाकि वह सोचता है कि वह करुणा से युक्त है और अपनी भावनाओं के अनुसार दूसरे की मदद कर रहा है, लेकिन वास्तविकता यही है कि वह कर्तव्य च्युत हो गया।

हमने यह बात इसलिये कही कि गुरु के सम्बन्ध में जो मानसिक, वैचारिक स्पष्टता होनी चाहिए, अगर वह नहीं रहे, तो गुरु भी मदद नहीं कर सकता। कहते हैं न कि ताली एक हाथ से नहीं बजती। इसको कहा जाता है 'संवाद'। अपने जीवन को एक किताब की तरह खोल देना। इस प्रकार का अटूट सम्बन्ध जब गुरु के साथ होता है, तब गुरु हर तरह से शिष्य की सहायता करते हैं। जब उनसे कुछ छिपा नहीं रहता है, तब वे शिष्य के हित को ही ध्यान में रखते हुए उसकी मदद करते हैं। लेकिन अगर किताब ही बन्द है और हम कुछ आदेश लेना चाहते हैं, तो उस समय गुरु चाहकर भी मदद नहीं कर सकते हैं।

धीरे-धीरे जब हम गुरु के निर्देशानुसार चलने लगते हैं, करने लगते हैं, तो जीवन में एक सन्तोष का अनुभव होने लगता है। मैं 'शान्ति' नहीं, 'सन्तोष' कह रहा हूँ। जब जीवन में सन्तोष का अनुभव होने लगता है कि 'हाँ, हम सही ठिकाने पर आ रहे हैं, तब जाकर गुरु के साथ एक अन्तरंग सम्बन्ध की स्थापना होती है।' इस अन्तरंग सम्बन्ध को रेडियो के माध्यम से समझ सकते हैं। वायुमण्डल में तो रेडियो तरंगें हैं, लेकिन हम उनको पकड़ नहीं पाते। अगर अपने पास रेडियो हो, तो जिस फ्रिक्वेंसी में चाहें, ट्यूनिंग करके उसे पकड़ सकते हैं।

एक शिष्य के जीवन में यह जो ट्यूनिंग की प्रक्रिया है, यह दूसरे चैनल में होती है। पहले अपने आपको खोल देना है, पापी हूँ या कपटी हूँ, जैसा हूँ तुम्हारा हूँ। दूसरे चैनल में जब गुरु के आदेशों का पालन करते हुए हम अपने मन में सन्तोष का अनुभव करते हैं, तब गुरु तत्त्व की ट्यूनिंग स्वत: होती है, क्योंकि तब शिष्य के जीवन में एक विश्वास, श्रद्धा, भक्ति की भावना जागृत हो जाती है। फिर शरीर की कोई आवश्यकता नहीं। शरीर हजारों मील दूर है, गुरु समाधिस्थ भी हैं, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता, फिर जब चाहें, वे आपको निर्देश देंगे।

बच्चों में बच्चे, बूढ़ों में बूढ़े

स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती

7 जून 1956 को प्रात: सूर्य की प्रथम किरण के साथ ही अभिनव सूर्य स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का नन्दग्राम में शुभ आगमन हुआ। सैकड़ों लोग स्टेशन पहुँचे, सबने आश्चर्य से देखा कि वामन भगवान जैसा सुदर्शन संन्यासी अद्भुत शक्ति बिखेरता हुआ हमारे सामने खड़ा है और सब उनके चरणों में नत हो गये। सत्यव्रत जी के निवास में मेला सा लग गया।

कुछ लोग जो अपने को उच्च कोटि का साधक व विद्वान् समझते थे, स्वामी सत्यानन्द जी के लेखों को पढ़कर प्रभावित होते थे, उन लोगों ने अपनी कल्पना के अनुरूप 'एक महामानव, शरीर से भी, डीलडौल में भी, चेहरे से भी, बोलने में भी', कुछ विचित्र कल्पना की रही होगी। पर जब उन्होंने देखा, एक सरल सा संन्यासी, जिसके अंग-प्रत्यंग में बालसुलभ कोमलता थी, मुखमण्डल पर उत्कट गंभीरता, मधुरता झलक दिख रही थी, वामन भगवान सा बाल रूप देख कुछ निराश से हो गये। लेकिन जब स्वामी सत्यानन्द जी ने मधुर स्वर में कुशल-क्षेम पूछी व पूर्व परिचित जैसे बातें करने लगे, तो उन लोगों का भ्रम भी दूर होने लगा।

नन्दग्राम में कई संस्थाएँ हैं जहाँ संत-महात्मा आते ही रहते हैं और सत्संग-प्रवचन चलते रहते हैं। सत्यव्रत जी सभी से जुड़े थे, पर शंकर-भवन के बाल-समाज के विशेष कार्यकर्त्ता थे। वहीं के लिए सितम्बर में पड़ने वाले श्री गणेश उत्सव के समय प्रवचन के लिए गुरुदेव शिवानन्द जी से स्वामी भेजने का अनुरोध किया था। उन्हीं शंकर-भवन वालों के विशेष अनुरोध पर तय हुआ कि रात का सत्संग-प्रवचन

शंकर-भवन में होगा। सत्यव्रत जी के बंगले पर दिनभर लोगों का आना-जाना लगा रहता। सुबह 5 बजे से सभी लोग आते, आसन-प्राणायाम चलता, 6 बजे से बच्चों का मेला लगा रहता। स्कूल में गर्मी की छुट्टियाँ चल रही थीं, बच्चों का राज्य था। दोपहर 2 से 4 बजे तक महिलाओं का सत्संग चलता। 6 बजे सब शंकर-भवन जाते और प्रोग्राम के बाद 9 बजे वापस आना शुरू होता।

शहर वालों के विशेष अनुरोध पर एक सप्ताह के लिए शंकर-भवन में रहने गये। 5 बजे सुबह से शंकर-भवन में लोगों का आना शुरू होता तो 10 बजे तक भीड़ लगी रहती। बच्चे तो वहाँ दिनभर रहते थे। स्वामी सत्यानन्द जी बच्चों के मसीहा बन गये थे। बच्चों को जीवन में पहली बार एक संत के इतना निकट आने का, कुछ सुनने-समझने का सुयोग मिला था। बच्चे पूछते, 'स्वामीजी, आप चाँदी की कुर्सी पर क्यों नहीं बैठते?' शंकर-भवन वालों के बच्चे कहते, 'स्वामीजी, आप बादाम का हलुआ क्यों नहीं खाते? एक स्वामीजी आये थे, वे एक किलो बादाम का हलुआ खा जाते थे, प्रसाद भी नहीं देते थे। खूब सा मेवा व फल भी खाते थे। आप भी बोलो न बादाम हलुआ बनवाने को, आप तो थोड़ा-सा खाते हैं, फिर तो हम लोगों को खूब सा प्रसाद मिलेगा, मजा आ जायेगा।'

बच्चे दिनभर अपने कला-कौशल, खेल-तमाशा, नाच-गाना दिखाते, नाटक करते। भजन खूब सीख गये थे। लोग आश्चर्य से कहते, 'ये बच्चे श्री कृष्ण के बाल गोपाल हैं या श्री राम की वानर सेना या शिव जी के गण हैं। और आप क्या हो, हमारी समझ में कुछ आता ही नहीं।' स्वामी सत्यानन्द जी हँसकर कहते, 'हम तो सिर्फ संन्यासी हैं और ये बच्चे भविष्य के राम, कृष्ण, शिव हैं और हैं राष्ट्र के कर्णधार ...।'

जो एक बार भी स्वामी सत्यानन्द जी से मिल लेता या सत्संग में आता, वह इन्हें भूल ही नहीं पाता। इनसे मिलने वाले यही कहते, 'इतनी कम उम्र में इतने सुन्दर-सुन्दर गुणों का समावेश कैसे हो गया! सहृदयता, त्याग, उदारता, सत्य, प्रेम, स्नेह, बाल-सुलभ भोलापन, विनम्रता, गंभीरता और दूरदर्शिता इनकी रग-रग में भरी है। इनके आदर्श अनुकरणीय हैं।'

एक बार स्वामी सत्यानन्द जी दोपहर के समय ट्रेन से आने वाले थे। रेलवे के बड़े बाबू स्वामी शिवानन्द जी के शिष्य थे, स्वामी सत्यानन्द जी के आने से बहुत प्रसन्न थे। दोपहर एक बजे सब स्टेशन गये। बच्चों की लम्बी कतार व बड़ों का अम्बार देखा तो उसने प्लेटफार्म का टिकट ही बंद कर दिया। कहा, 'बच्चों, स्वामी सत्यानन्द जी की जय कहकर चले जाना।' स्वामी सत्यानन्द जी शंकर-भवन आये। हॉल में भजन-कीर्तन चल रहा था। उन्होंने कुछ आराम किया, फिर स्नान करके आ गये। स्वामीजी के बैठते ही बच्चों का ताण्डव नृत्य चला, अगड़ बम् का नृत्य, फैन्सी ड्रेस, बच्चे अपने प्रिय स्वामी को अपने कला-कौशल दिखा रहे थे। वहाँ पर बच्चे-फूल-बैलून ही दिखते थे। पूजा-प्रसाद, हँसी-खुशी, चारों तरफ बिखर रही

थी। फिर लड़कियों का रेलगाड़ी का रूपक चला, स्वामीजी भी साथ दे रहे थे, मानो कह रहे हों – 'रहने दो अपना ज्ञान, अपना दर्शन, अपनी आध्यात्मिकता। चलने दो मेरा जीवन, जैसे सुन्दर बचपन। मुझे तो पक्षियों की तरह उड़ना अच्छा लगता है। रहने दो अज्ञानी, मुझे नहीं चाहिए तुम्हारा ज्ञान, नहीं चाहिए तुम्हारी विद्वत्ता, मुझे इन पक्षियों के कूल-कुंजन के साथ गा लेने दो, मुझे रोको मत।'

मैं उन्मुक्त गगन का पंछी, मैं अजस्र अमृत की धारा।
मैं प्रशान्त सामोद सनातन, मैं खुशियों का दीप्त सितारा॥

स्वामीजी के पास लोग अपनी समस्याएँ, परेशानियाँ लेकर आते और खुश होकर जाते थे। लोगों की समस्यायें, जैसे, भाई-भाई, पिता-पुत्र, सास-बहू, पति-पत्नी का तनाव दूर होने लगा, झगड़ा शांत होने लगा। स्वामी सत्यम् सबके प्रिय व पूज्य बन गये थे। मिल के ऑफिसर से क्लर्क तक, ऑफिस जाते समय और घर वापस आते समय दो-दो मिनट के लिए स्वामीजी के पास जरूर आते थे। महिलायें भी सुबह सब काम छोड़कर प्रणाम करने जरूर आतीं। बच्चों के तो अपने ही थे, छोटे बच्चे रोते आते, उनकी गोदी में छुप कर कहते, 'माँ मारती है।' 'क्यों मारती है?' 'हमको नहा कर जाना, नाश्ता करके जाना, थोड़ी देर से जाना, कहती है।' बड़े बच्चे सहपाठी की या शिक्षक की शिकायत करते। पति-पत्नी भी एक-दूसरे की शिकायत करते, स्वामीजी दोनों को सामने बैठा कर समझाते, फिर हँस कर कहते, इसी डर से तो हमने शादी नहीं की है जी।

स्वामीजी के पास बच्चे आते, कहते – भूगोल, इतिहास समझा दीजिए। वाद-विवाद प्रतियोगिता के लिए दोनों पक्ष के बच्चे एक साथ आते, अपने विषय का पूछते, लिखते और उनको सुनाकर आशीष लेकर जाते। पूरे शहर के अपने हो गये थे। क्लब की पार्टी भी स्वामी सत्यम् को नहीं छोड़ती, बच्चों और महिलाओं को भी बुलाया जाता, वहाँ भी सत्संग चलता था। *'मास दिवस कर दिवस भा, मरम न जाने कोउ।'* समय पंख लगा कर उड़ रहा था, किसी को पता ही नहीं चलता। जगह-जगह सत्संग होने लगा, स्कूल-कॉलेज, पास के देहातों में भी प्रोग्राम बनने लगा। मिल में 10-12 बंगले वाले तो उनको एक मिनट भी नहीं छोड़ना चाहते। शाम को सब अपना भोजन उठा लाते, फिर सब मिलकर खाते, सुबह किसी के यहाँ सबका भोजन होता। किसी के आंगन-बाड़ी में रविवार को सब मिलकर भोजन बनाते, स्वामीजी का सत्संग चलता, खूब आनन्द आता, 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' साकार हो गया था।

स्वामी सत्यानन्द बच्चों में बच्चे हैं, बूढ़ों में बूढ़े हैं, अपठ व गाँव के गरीबों में जनसेवी हैं, एकदम सामान्य हैं और विद्वानों में निष्णात-विचारवान् हैं। भक्तों में भावुक भजनिक हैं तो साधकों में उत्कृष्ट योगाचार्य हैं। अभावग्रस्त व्यक्तियों के बीच एक उत्तम देश कालज्ञ, पथ-प्रदर्शक हैं। स्वत: अनामी रहकर, दूसरों को मान देना वे अच्छी तरह जानते हैं। उनकी विद्वत्ता गंभीर है, परन्तु विद्वत्ता से ज्यादा उनकी सेवा-परायणता है, जो अथक है। समय की आवश्यकताओं को देखते-पहचानते हुए उन्होंने अपनी चर्या ऐसी बना ली है कि हृदय जीतने की कला में वे आप ही आप सुदक्ष हो गये हैं। उनके लिए बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। वे सबमें एक ही आत्मा को देखते हैं। उनके पास भेदभाव नहीं है। जैसे माँ का स्नेह पुत्र-पुत्री पर बराबर रहता है, वैसे ही स्वामी सत्यानन्द भी विश्वमय हैं।

निष्काम भावना की महत्ता

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

व्यक्ति जब उपासना करता है, चाहे गुरु की करे या देवी-देवता की, तो उपासना का स्वरूप हमेशा सकाम रहता है – मेरे लिए कुछ कर दो। जब तक उपासना का यह स्वरूप रहता है, श्रद्धा भी सकाम होती है, भक्ति भी सकाम होती है और जिस दिन हमारी वह इच्छा पूर्ण हो जाती है, फिर दूसरी मनौती लेकर हम उनकी पूजा करते हैं। अगर दूसरी इच्छा नहीं है, तो पूजा वहीं पर ही रुक जाती है, क्योंकि हमने जिस प्रयोजन से पूजा की थी, वह तो पूरा हो गया। अब ऐसी परिस्थिति में ईश्वर या गुरु की कृपा कैसे प्राप्त होगी? हमारा मन, बुद्धि, अपेक्षायें, ये सब तो सकाम रंग में रंगे हुए हैं।

शास्त्रों में कहा गया है, गुरुजनों ने भी कहा है कि दैवी अनुग्रह प्राप्त करने के लिए निष्काम भाव रखना चाहिए। सकाम में कपट हो सकता है, वासना हो सकती है लेकिन निष्काम में न कपट है, न वासना है। जब कोई व्यक्ति दैवी कृपा का पात्र बनना चाहता है, तो उसके लिए पहला प्रयास होता है कि वह सकाम भावों को निष्काम में परिवर्तित करे। यह पहला प्रयास है। जैसे-जैसे सकाम भाव निष्काम में परिवर्तित होता है, हम दैवी अनुग्रह का अनुभव अपने जीवन में करने लगते हैं, और यह पहला चरण ही अन्तिम चरण हो जाता है। इसके लिए यही जरूरी होता

है कि एक बार हम अपने आप का निरीक्षण करें, परीक्षण करें, अवलोकन करें कि वास्तव में हमारी आवश्यकता है क्या?

भारत की परम्परा और संस्कृति में हर प्रकार के लोग हुए हैं, आस्तिक भी हुए हैं, नास्तिक भी, परन्तु हमारी संस्कृति श्रद्धा आधारित संस्कृति रही है। अगर भारतीय संस्कृति से आप श्रद्धा को हटा दीजिए, तब तो संस्कृति का कोई रूप-रंग नहीं बचेगा। भारतीय संस्कृति में यह कहा जाता है कि गुरुओं के प्रति, बड़ों के प्रति श्रद्धा, सम्मान आदि का जो भाव रहता है, वही व्यक्ति के जीवन की सरलता को कायम रखता है। इतिहास इसका साक्षी है कि जिसने श्रद्धा का त्याग किया और पदार्थवादी जगत् की ओर कदम बढ़ाया, उसने अपने जीवन में हमेशा अशान्ति का अनुभव किया। जो भौतिकता में लिप्त हो गया और श्रद्धा से हट गया, उसके जीवन में हमेशा तनाव, अशान्ति, परेशानी, दु:ख और क्लेश रहेंगे।

भारतीय परम्परा में एक और चीज है। आज मनुष्य दु:ख से दूर भागना चाहता है, लेकिन परम्परा में, संस्कृति में यह नहीं कहा गया है कि तुम दु:ख से दूर भागो, बल्कि यह माना गया है कि दु:ख में ही ईश्वर की अनन्य भक्ति हो सकती है, जो कि सुख में सम्भव नहीं है – 'दु:ख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोई।' कुन्ती ने भी यही बात श्रीकृष्ण से कही। जब महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया, पाण्डवों को राज्य मिल गया, श्रीकृष्ण द्वारका लौटने लगे, तो जाने से पहले कुन्ती के पास आते हैं और कहते हैं, 'बुआ, सब कुछ हो गया और अब मैं चला।' तो कुन्ती कहती है, 'कृष्ण, जब सुख के दिन आये हैं, तो तुम जा रहे हो। जब तक हम लोगों के जीवन में दु:ख था, तुम हमेशा साथ रहे। और साथ कैसा? केवल स्मरण मात्र से ही तुम हम लोगों की सहायता के लिए दौड़े चले आते थे। जब द्रौपदी का चीरहरण हो रहा था, तब उसके स्मरण ने तुमको खींच लिया। जब भोजन के लिये दुर्वासा आये, और द्रौपदी के अक्षयपात्र का भोजन समाप्त हो चुका था, स्मरण से तुम खिंचे चले आये।'

दु:ख में व्यक्ति जितनी बार भी भगवान का स्मरण करता है, वे चले आते हैं। स्मरण का मतलब है अनन्य भक्ति – 'तुम्हीं हो हमारा सहारा, अब कोई नहीं बचा है।' द्रौपदी के जीवन में तो यही हुआ। चीरहरण के समय सबसे पहले उसने धृतराष्ट्र से, फिर गुरुजनों से, फिर श्रेष्ठजनों से, अपनों से मदद माँगी। जब कहीं से, कोई भी सहायता नहीं मिली, तब भगवान को याद किया। और पहली ही पुकार में, 'हे कृष्ण' कहते ही कृष्ण जी पहुँच गये।

कहने का तात्पर्य यह है कि दु:ख से कभी भागना नहीं, क्योंकि दु:ख में ही अनन्य भक्ति सम्भव है। सुख में अनन्य भक्ति सम्भव नहीं है। सुख में तो मन मस्त रहता है, सब कुछ अच्छा लगता है। अत: सकाम से निष्काम होकर श्रद्धा तथा भक्ति का विकास किया जाए, तो दैवी अनुग्रह प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिये बन्द बोतल को खोलना है। सकाम है बन्द बोतल, निष्काम है खुली बोतल।

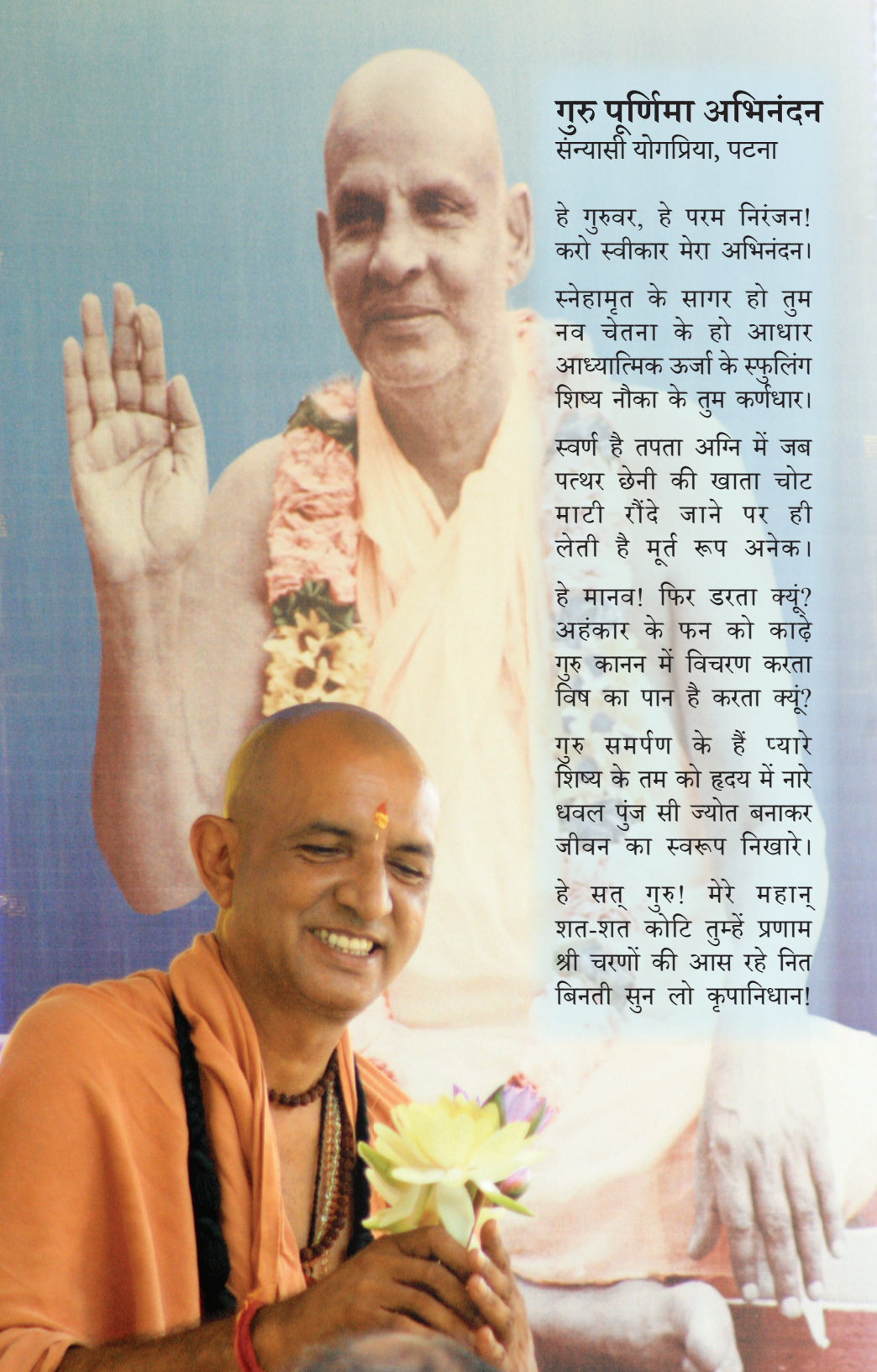

गुरु पूर्णिमा अभिनंदन

संन्यासी योगप्रिया, पटना

हे गुरुवर, हे परम निरंजन!
करो स्वीकार मेरा अभिनंदन।

स्नेहामृत के सागर हो तुम
नव चेतना के हो आधार
आध्यात्मिक ऊर्जा के स्फुलिंग
शिष्य नौका के तुम कर्णधार।

स्वर्ण है तपता अग्नि में जब
पत्थर छेनी की खाता चोट
माटी रौंदे जाने पर ही
लेती है मूर्त रूप अनेक।

हे मानव! फिर डरता क्यूं?
अहंकार के फन को काढ़े
गुरु कानन में विचरण करता
विष का पान है करता क्यूं?

गुरु समर्पण के हैं प्यारे
शिष्य के तम को हृदय में नारे
धवल पुंज सी ज्योत बनाकर
जीवन का स्वरूप निखारे।

हे सत् गुरु! मेरे महान्
शत-शत कोटि तुम्हें प्रणाम
श्री चरणों की आस रहे नित
बिनती सुन लो कृपानिधान!

गज-ग्राह-गाथा – योग के आलोक में

स्वामी त्यागराज सरस्वती

गज और ग्राह की पौराणिक कथा से प्राय: सभी लोग परिचित हैं। यहाँ इस कथा का यौगिक दृष्टिकोण से विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

गज की स्वाभाविक गति जल की ओर है। इसी तरह चेतना मूलाधार से स्वाधिष्ठान चक्र की ओर बढ़ती है। जल गहरा है। अन्दर बहुत कुछ छुपा है। जल का सबसे शक्तिशाली जलचर ग्राह है। जन्मों-जन्मों की कामना-वासना जिनसे पार पाना कठिन है, सब यहीं पर है।

पृथ्वी पर गज अजेय है, शक्तिशाली है, सुरक्षित है। पर गज की तृषा जल की ओर ले जाती है। चेतना वासना की ओर खींची चली जाती है, वह मूलाधार से स्वाधिष्ठान की ओर गतिशील होती है। गज जल में प्रवेश करता है। ग्राह घात लगाये बैठा है। चेतना स्वाधिष्ठान पहुँचती है। जन्मों-जन्मों की वासना भी घात लगाये बैठी है। गज ग्राह के जबड़े में फंस जाता है। चेतना वासना-कामना में फंस जाती है।

पृथ्वी का सबसे शक्तिशाली प्राणी गज अपनी पूरी शक्ति से छूटने का प्रयास करता है, किन्तु जल में ग्राह की शक्ति के आगे स्वयं को असहाय पाता है। कई बार गज ग्राह को खींचकर किनारे लाने का प्रयास करता है, किन्तु जल में अजेय ग्राह पुन: गज को गहराई में खींच लाता है। बार-बार चेतना वासना के पार जाना चाहती है, पर हर प्रयत्न निरर्थक हो जाता है।

गज हार जाता है, उसे अपना अन्तिम समय दिखाई पड़ने लगता है। जीवन से निराश, अन्त समय में उसकी दृष्टि जल में कमल पुष्पों पर पड़ती है। स्वाधिष्ठान की हजारो जन्मों की वासनाओं एवं कामनाओं के बीच कमल पुष्प रूपी शुभकामना भी तैरती है।

अंत समय में गज हृदय से स्मरण करता है अन्तिम बांधव, दीनदयाल, तारणहार भगवान नारायण का। चेतना का हर प्रयत्न जब निरर्थक हो जाता है, तब शुभकामना, शुभसंस्कार से उच्च चेतना, गुरु एवं भगवान से प्रार्थना करती है।

नारायण जल से ही प्रकट होते हैं। अपने सुदर्शन चक्र से ग्राह का शिरच्छेद करते हैं, गज को मुक्त करते है। गुरु एवं भगवान के अनुग्रह से गज-ग्राह-गुरु का संयोग बनता है।

स्वाधिष्ठान से पार पाना बहुत कठिन है। गुरु के अनाहत अर्थात् हृदय में स्थित नारायण के मणिपुर रूपी चक्र से वासना कटती है, भस्म होती है। चेतना आगे बढ़ती है।

इस प्रकार इस कथा के पात्र यौगिक चक्रों के प्रतीक प्रतीत होते हैं। गज मूलाधार चक्र का प्रतीक है। योग शास्त्र में इस चक्र का वाहन भी सात सूढों वाला गज बताया गया है। साथ ही इस चक्र के देवता स्वयं गजानन गणेश हैं। ग्राह स्वाधिष्ठान चक्र का प्रतीक है। योग शास्त्र के अनुसार भी इस चक्र का वाहन सफेद रंग का ग्राह बताया गया है। वासनाओं को भस्मीभूत करने वाला सुदर्शन चक्र मणिपुर का प्रतीक है और गरुडगामी भगवान नारायण अनाहत चक्र के, तथा सम्पूर्ण कथा इन चक्रों में चेतना के आरोहण और संघर्ष को दर्शाती है।

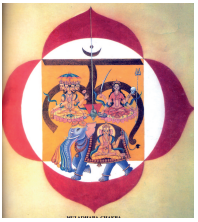

समर्थ गुरु के समर्पित शिष्य

संन्यासी श्रद्धामती

विवेकचूड़ामणि में मनुष्य जीवन की व्याख्या करते हुए लिखा है – 'मनुष्य का जन्म, मोक्ष की इच्छा और संत-महात्माओं का सम्पर्क, ये तीनों मुश्किल से मिलते हैं, बल्कि भगवान या गुरु की कृपा से ही मिलते हैं।' यही गुरुकृपा स्वामी गोरखनाथ जी के जीवन में प्रत्यक्ष दिखायी देती है।

मैं सन् 2000 से स्वामी गोरखनाथ जी को देखते आ रही हूँ, जैसे तब दिखते थे बिल्कुल वैसे ही अभी 2021 में भी दिखते हैं। लगता ही नहीं है कि शारीरिक, मानसिक या भावनात्मक रूप से कोई परिवर्तन हुआ हो। हर दृष्टि से सुदृढ़, कोई चिन्ता नहीं, कोई फिक्र नहीं। वे सिर्फ दूसरों को सलाह ही नहीं देते, बल्कि स्वयं भी उसका पालन करते हैं। खूब गप्प लगाते हैं, हँसी-मजाक करते हैं, खुश और मस्त रहते हैं। बहुत सुलझे हुए संन्यासी हैं। जिन्होंने इतनी कम उम्र में अपना जीवन संन्यास और योग को समर्पित कर दिया हो, उनके लिए आखिर ऐसा क्यों न हो।

आज गिने-चुने ही संन्यासी हैं जो योग पर केवल प्रवचन देने में विश्वास नहीं करते, बल्कि योग को जीते हैं। गोरखनाथ जी कहते भी हैं, 'कई ऐसे विद्वान-संत-महात्मा होते हैं जिनमें केवल शास्त्रीय किताबी ज्ञान रहता है, लेकिन व्यावहारिक अनुभव नहीं रहता। जैसे कर्मयोग साधकों के लिए अच्छा है, उनके आन्तरिक शुद्धिकरण के लिये, यह तो शस्त्र है अहंकार को काटने के लिये, लेकिन कई संन्यासी या योग शिक्षक कर्मयोग पर बोलते ही नहीं है, क्योंकि अनुभव नहीं है, स्वयं किया भी नहीं है। हमारे गुरुदेव स्वामी सत्यानन्दजी ने योग की सभी शाखाओं की साधना की थी। भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग और राजयोग आदि वे हम सबके साथ भी करते थे। उनके साथ काम करने से उनकी ऊर्जा स्वत: प्राप्त होती थी। इसी के अनुभव द्वारा अपने शिष्यों का वे मार्गदर्शन करते थे। यही सच्चे संन्यासी का लक्षण है। हमने अपने गुरुजी से यही सीखा है कि जो बोलना है, पहले उसका अनुभव करो, फिर बोलो।'

गोरखनाथ जी ने परमहंस जी के जीवन को बहुत करीब से देखा है। जो सीखा उन्हीं की छत्रछाया में सीखा। एक समर्पित शिष्य की भाँति वे जीवन जी रहे हैं। युवावस्था से उन्हें नाम-यश कमाने के कई अवसर मिले। बहुत कम उम्र में वे ऑस्ट्रेलिया जाकर आ गये थे। कोई और होता तो खुश होता कि विदेश घूमकर आयेगें, पर गोरखनाथ जी तो ऑस्ट्रेलिया जाने का सुनते ही रोने लगे। खैर इसे गुरु-कार्य समझकर पूरा किया, लेकिन कभी इसका अहंकार नहीं किया। सच्चा शूरवीर तो वही है जो अपने अहंकार को मार सके, और इन्होंने इतनी कम उम्र में

अपने अहंकार को मार गिराया। वे चाहते तो युवावस्था से ही कुछ भी कर सकते थे, स्वतन्त्र रूप से आश्रम का निर्माण करके तथाकथित 'योग गुरु' बन सकते थे, लेकिन नहीं, वे सदा एक सेवक की भाँति सत्यानन्द योग परम्परा से जुड़े रहे।

जीवन पर्यन्त वे यात्रा, शिविर, योग कक्षा, सत्संग, भिक्षाटन आदि करते आ रहे हैं और आज भी कर रहे हैं। लेकिन कभी थकते नहीं हैं। आज भी उनमें वही ऊर्जा है जो 40-50 साल पूर्व थी। हाल ही में जिन लोगों ने उन्हें सुना होगा, वे इससे सहमत होंगे। कोई भी विषय हो, धाराप्रवाह बोल जाते हैं, वह भी एकदम सरल, व्यावहारिक शब्दों में।

सन् 1970 में जब उन्होंने घर छोड़ा तब उनके पास एक झोले में दो जोड़ा कपड़ा, गमछा और मंजन था। उतना ही सामान लेकर उन्होंने ऑस्ट्रेलिया की यात्रा की। चप्पल पहनकर, बिना किसी गरम कपड़े के ऑस्ट्रेलिया जाना, आज हम सुनते हैं तो आँखों से अश्रुधारा बहने लगती है। और उसी हालत में एयरपोर्ट पर ऑस्ट्रेलियन

कमिश्नर को योग सीखाना – अपने आप में यह एक आदर्श संन्यासी की सरलता का उदाहरण है। बस गुरु आदेश हुआ और चल दिये। आज भी वे जहाँ भी जाते हैं अपने झोले में 2-3 चीजों से ज्यादा नहीं रखते, यही उनका सारा सामान होता है।

वे जो भी होते, आदर्श ही होते, यदि गृहस्थ होते तो भी। घर में माँ भी 4-5 बच्चों से ज्यादा को सम्भाल नहीं पाती, लेकिन उन्होंने तो गंगा दर्शन में सैकड़ों बच्चों को सम्भाला था, वह भी बिना डाँटे-मारे। बस एक नियम था – जो भी बदमाशी करेगा उसको भोजन नहीं मिलेगा, यही धमकी देते। बच्चे भी उनसे बहुत खुश रहते थे। वे बच्चों में बच्चे बन जाते हैं, युवाओं में युवा बन जाते हैं, उनसे ज्यादा जोश और ताकत दिखाते हैं। मिलजुल कर रहना कोई उनसे सीखे। वे कहते भी हैं, 'घर में एक अच्छे गृहस्थ की तरह रहें। ऐसा व्यवहार करें कि पत्नी-बच्चे आप से खुश रहें, घुलमिल कर रहें। यदि आप बाप होने का या ऑफिस के पद का अहंकार लेकर घर-परिवार में रहेंगे तो उनसे दूर होते जायेंगे। घर में सब से प्रेमपूर्वक बर्ताव करें। आप उनसे जैसा व्यवहार करेंगे वापस वैसा ही व्यवहार मिलेगा। ऑफिस का काम ऑफिस में ताला बन्द करके आओ, और घर-परिवार में खूब हँसी-मजाक करो।'

महिला हो या पुरुष, उनमें कोई अन्तर नहीं समझते। महिलाओं के लिए तो वे शुकदेव के समान हैं। वे महिलाओं को बहुत सम्मान देते हैं, इसलिए वे भी उनसे बहुत खुश रहती हैं। उनसे अपने पति की शिकायत करती हैं, कहती है, 'स्वामी गोरखनाथजी, इन्हें अच्छा आदमी बना दो।' तो स्वामी गोरखनाथ जी कहते हैं, 'हाँ जरूर। उन्हें आसन-प्राणायाम कराओ। मैंने तो तुम्हें सिखाया है। अच्छा-अच्छा खाना बनाकर खिलाओ समय पर। आश्रम लेकर आओ। बस बन गये अच्छे आदमी!' युवतियाँ तो उन्हें कार्यक्रम के दौरान पूरा दिन घेरे रहती हैं वे भी उनकी सारी समस्याओं का समाधान खूब ठहाके लगाते हुए करते नहीं थकते।

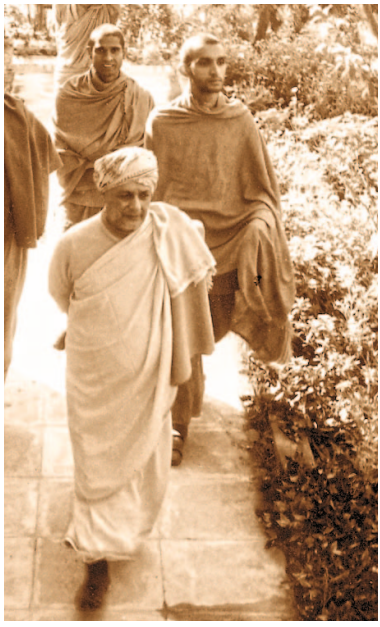

एक शिष्य सेवा से अपनी आध्यात्मिक यात्रा शुरू करता है और सेवा करते-करते स्वत: गुरु के प्रति समर्पण आता है। गोरखनाथजी भी सब से ज्यादा बल कर्मयोग पर और सादे, सरल, सहज जीवन पर देते हैं। आज भी उनका रहन-सहन ऐसा ही है, उन्हें दिखावा या आडम्बर पसन्द नहीं है।

परमहंसजी से उन्होंने सब से प्रेम से मिलना, बात करना सीखा है, चाहे वे गरीब मजदूर ही क्यों न हों। वे हमेशा दूसरों के बारे में सोचते हैं, यह बात बहुत हृदयस्पर्शी है। ऐसी दो घटनायें याद आती हैं। पहली, जब दक्षिण भारत में परिव्राजक जीवन के दौरान एक पण्डित ने उनसे निवेदन किया कि आप आज मेरे यहाँ प्रसाद लीजिए। वे गए तो जरूर, लेकिन कहा कि आपने अपने बच्चों के लिये ही भोजन बनाया होगा, पहले उनको दे दीजिए। वह तो पूर्वाभास के आधार पर गृहीणी ने दो लोगों का अतिरिक्त भोजन बनाया था, इसलिए कोई समस्या नहीं हुई।

दूसरी घटना ऋषिकेश में परिव्राजन काल की है। ब्रह्मानन्द आश्रम के मैनेजर ने उन्हें भण्डारे का चिट्ठा दिया तो उन्होंने कहा, 'मैं तो दौड़-भाग कर कहीं भी भिक्षा की व्यवस्था कर लूँगा। लेकिन वृद्ध सन्यासियों का क्या होगा? आप यह चिट्ठा उन्हें दे दीजिये।' ऐसे 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' संन्यासियों के लिए तो ये पंक्तियाँ पूरी तरह चरितार्थ होती हैं –

कोई नहीं पराया मेरा, घर सारा संसार है।
प्राणी मात्र उपास्य मेरा, देवालय हर द्वार है॥

स्वामी गोरखनाथ जी जैसी भी परिस्थिति में रहे, एडजस्ट कर गये और यही तो योग और आश्रम जीवन का महामंत्र है। इसी कारण वे जहाँ रहे आनन्द में रहे। कहते हैं न, 'क्या है यह तूफान, अरे मैं खुद आँधी बनकर चलता हूँ।' वे जहाँ भी रहे गुरु की आज्ञा का पालन करते रहे। ऋषिकेश में कैलाश आश्रम के मैनेजर के निवेदन करने पर भी वहाँ भोजन नहीं किया, बल्कि स्पष्ट कह दिया, 'गुरुजी ने भिक्षाटन करने के लिए कहा है, मैं उनके आदेश का पालन करूँगा।' जब मैं उनका अनुभव पढ़ रही थी तो मुझे लगा जब दो जगह दो समय की भिक्षा मिल जाती है तो फिर पैसे की भिक्षा क्यों लेना, लेकिन आगे पढ़ने पर समझ में आया कि भिक्षा माँगकर जो पैसे मिलते उसकी पुस्तकें खरीदकर वे पढ़ते थे।

सत्यानन्द योग के प्रचार-प्रसार में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। धन्य हैं वे जिन्होंने सनातन धर्म की रक्षा के लिये अपना जीवन दिया, भाग्यशाली हैं वे जो गुरु की शिक्षाओं को अक्षरक्ष: जी रहे हैं। आज भी परमहंसजी उनकी रग-रग में बसे हैं –

जो जिसका सच्चा प्यारा है, वो उसे प्राण सम होता है।
दर्शन चाहे जन्मों में हो, अनुराग नहीं कम होता है॥

उनके लिये बस यही प्रार्थना है कि जब उनका अन्तिम समय आये ऐसे ही हँसते हुए इस जग से प्रस्थान करें। जैसे वे खुद कहते हैं, 'मैं तो चलती में गाड़ी पकड़ना चाहता हूँ।' काश ऐसा ही हो, गाड़ी जब सीटी दे दे और हरी झंडी दिखा दे तब वे दौड़ते हुए गाड़ी चढ़ें …

हे सत्यम्! तुमको प्रणाम

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

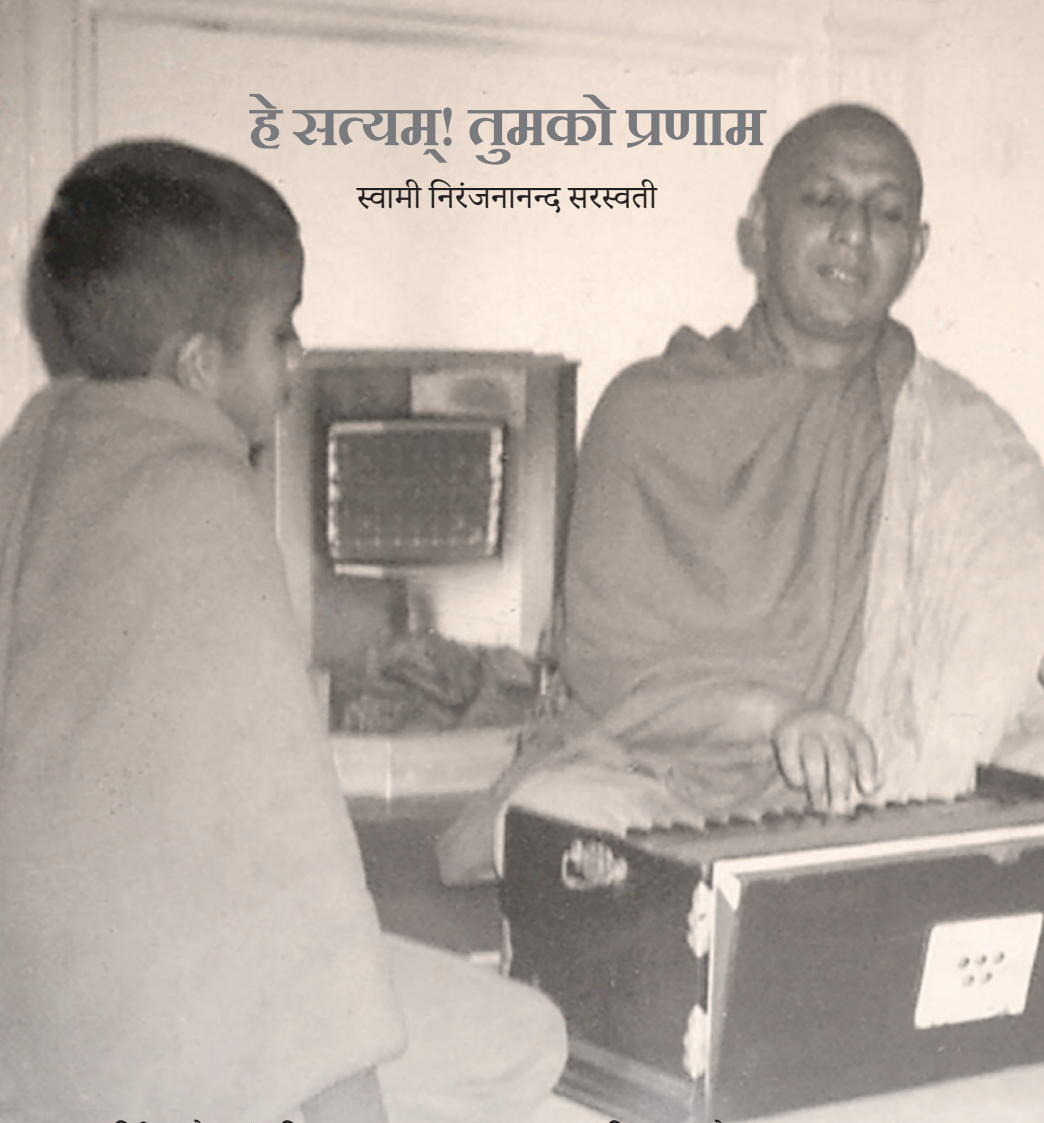

गिरिवर के उत्तुंग शिखर पर
सुरसरि के पावन पथ पर।
शान्ति दूत अध्यात्म भूत
तेरे ही कारण गर्वित धरा महान्॥
तुमको प्रणाम हे ध्रुव ललाम।
हे सत्यम्! तुमको प्रणाम॥

तेरे पद रज भी पा जाऊँ
यदि तेरे अगण्य भक्तों की भी।
हे करुणामय तर जाऊँ
मिट जावे लालसा जी की॥

तुम अखिल धरा के गुरु महान्।
हे सत्यम्! तुमको प्रणाम॥

देव तुम परम सच्चिदानन्द
हम मृत्यु लोक के भार।
करो हे सत्यम् करतार
श्रद्धा के दो फूल स्वीकार॥
श्रद्धा-सिंचित संपृक्त हिये
अंजलि में दो अल्प प्रसून लिये
हे सत्यम्! तुमको प्रणाम॥

– मुंगेर, 1969

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

मेरे आराध्य

स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती

पृष्ठ 384, ISBN: 978-81-86336-88-5

संतों का जीवन सदा से ही सब के लिए अजस्र प्रेरणा का स्रोत रहा है। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ऐसे अनोखे साधु व योगी हैं, जिन्होंने सिद्धियाँ प्राप्त कर वनान्त में समाधि नहीं लगायी, बल्कि अपनी योग-शक्ति का प्रयोग निरंतर जन-कल्याणार्थ करते रहे; और इस संसार सागर से निर्लिप्त ही रहे। जो भी श्री स्वामीजी के सम्पर्क में आया, उसका जीवन परिवर्तित हो गया और वह सदा के लिए इनका होकर रह गया। आध्यात्मिक दृष्टि से इस 'गुरु गीता' की महत्ता उतनी ही है, जितनी प्राचीन पुराणों और शास्त्रों की।

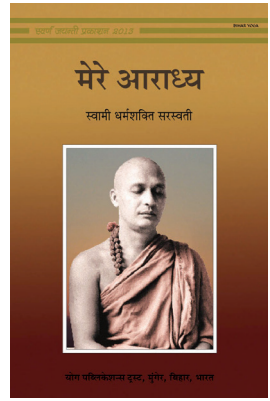

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91–6344–222430, 9162783904

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net
बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद
बिहार योग परम्परा की समस्त प्रकाशित कृतियाँ *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना
biharyoga.net तथा *satyamyogaprasad.net* पर स्वस्थ जीवन हेतु यौगिक जीवनशैली साधना उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/
योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2020-23
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

सभी ग्राहकों के लिए महत्त्वपूर्ण सूचना

आत्मस्वरूप

हरि: ॐ

हमें यह सुखद समाचार देते हुए हर्ष हो रहा है कि जनवरी 2021 से मासिक योगा (अंग्रेज़ी) तथा योगविद्या (हिन्दी) पत्रिकाएँ सभी ग्राहकों, सहयोगियों, योगप्रेमियों, भक्तों तथा आध्यात्मिक साधकों के लिए निम्नांकित वेबसाइटों पर नि:शुल्क उपलब्ध रहेंगी –

www.satyamyogaprasad.net

www.biharyoga.net

वर्तमान कोरोनावायरस महामारी और उससे उत्पन्न अनिश्चितता के कारण योगा और योगविद्या की प्रकाशित प्रतियाँ 2021 में ग्राहकों के लिए उपलब्ध नहीं रहेंगी। इसलिए 2021 में इन पत्रिकाओं के लिए नए सदस्यता आवेदन या पुरानी सदस्यता को बढ़ाने के आवेदन स्वीकार **नहीं** किए जा रहे हैं। अत: इन पत्रिकाओं के लिए सदस्यता आवेदन **मत** भेजिए।

पत्रिकाओं सम्बन्धी परिस्थिति की जानकारी आपको समय-समय पर मिलती रहेगी।

इस बीच श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती और श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की शिक्षाओं को ग्रहण कर उन्हें अपनी दिनचर्या में आत्मसात् एवं अभिव्यक्त कीजिये ताकि आपका जीवन उदात्त और उन्नत बन सके।

आपके स्वास्थ्य, कल्याण और शांति के लिए श्री स्वामी सत्यानन्द जी के आशीर्वाद सहित,

ॐ तत्सत्

सम्पादक